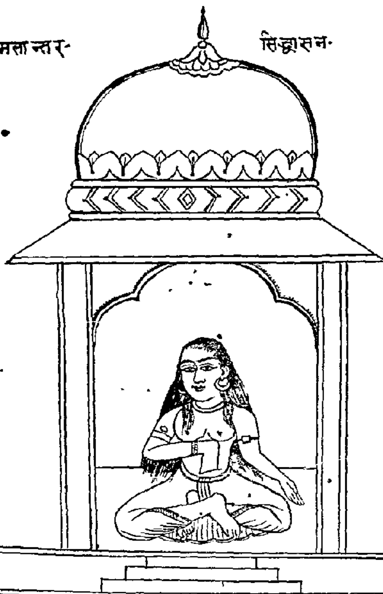
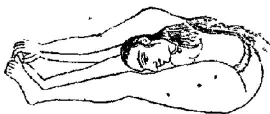

मतान्तर·
सिद्धासन·

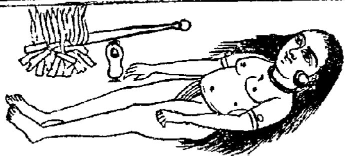

सिद्धासन

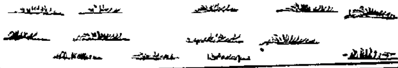

मयूरासन·



पश्चिमतांनआसन

शव आसन



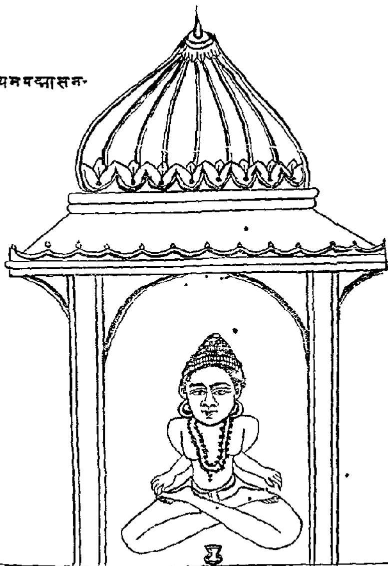


मतान्तर·

पद्मासन·





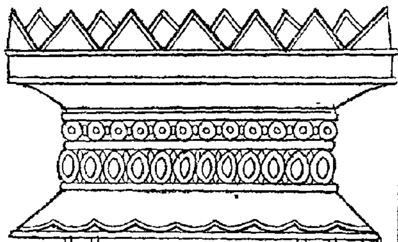

प्रथमपद्मासन.



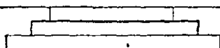
मत्स्येन्द्रासन।

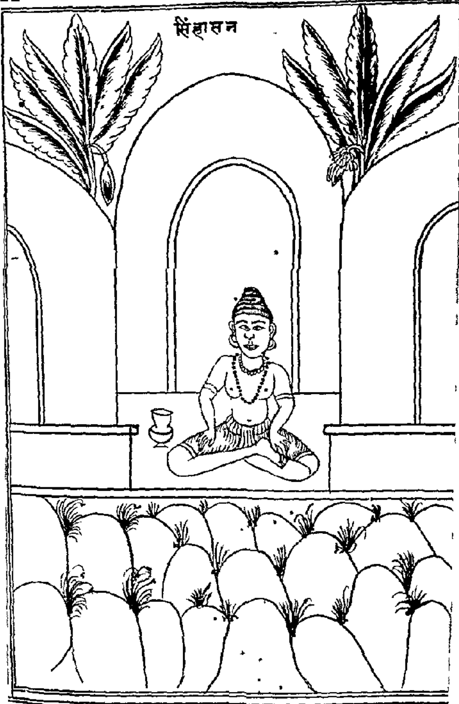


धनुरासन.








सिंहासन


महाबन्धः

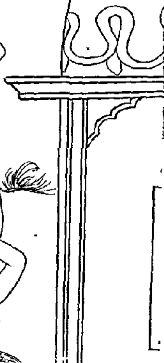


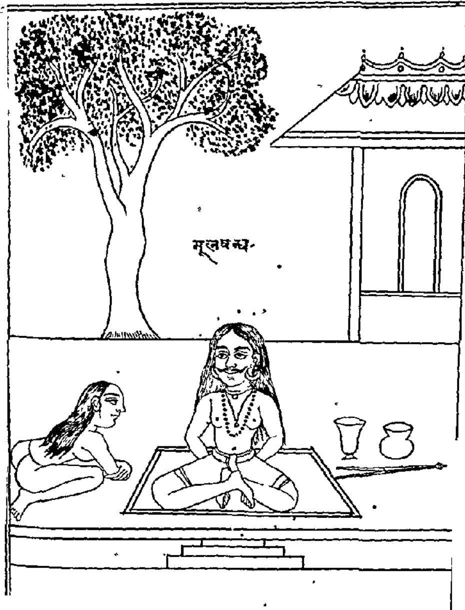
विपरीति·



वज्रोली·






मूलबन्ध.



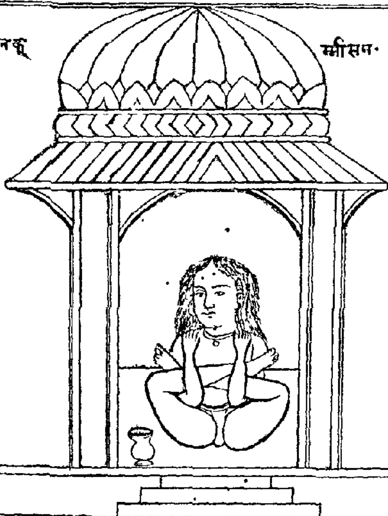
मतान्तरः

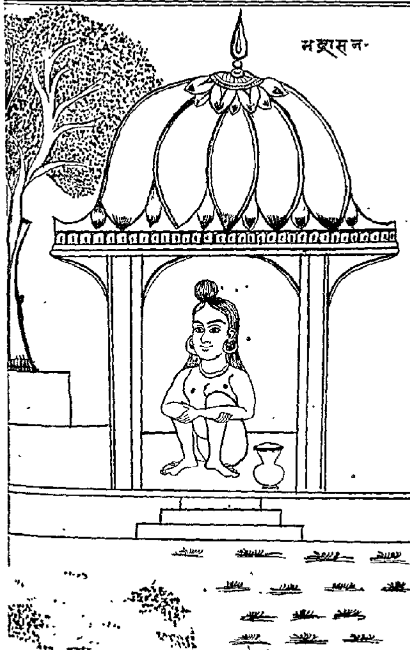
पुनःपद्मास








उत्तानकू
र्मासन·


भद्रासन.

कुक्कुटासन.



महावेध·





अथ घेरण्डसंहिता ।

एकदाचण्डकापालिर्गत्वाघेरण्डकुट्टिमम् ।
प्रणम्यविनयात्भक्त्या घेरण्डंपरिपृच्छति ॥१॥

एक समय चण्डकापालि नामक कोई एक योगशिक्षाभिलाषी, घेरण्ड नाम एक बड़े भारी योगेश्वर की कुटी को गये और विनयपूर्वक भक्ति सहित प्रणाम करके घेरण्ड महाराज से पूछने लगे। क्या पूछते हैं, और वह क्या चाहते हैं सो नीचे वर्णन किया जाता है ॥

घटस्थयोगंयोगेश ! तत्वज्ञानस्यकारणम् ।
इदानींश्रोतुमिच्छामि योगीश्वर ! वदप्रभो ॥२॥

श्री चण्डकापालिने कहा कि हे योगेश ! तत्वज्ञानका कारण घटस्थ (शरीरस्थ) योग है सो इस समय मेरी इच्छा उसके सुनने की हुई है। हे योगेश्वर ! हे प्रभो ! आप कृपाकर उसे सुनाइये ॥

तात्पर्य यह कि ज्ञान दो प्रकार का होता है एक सामान्य ज्ञान जो कि पशु पक्षी कीट भ्रमरादि को भी है जिससे कि पशु भी अपनी खाद्य वस्तु घास भूसा छोड़कर ककड़ पत्थर कभी नहीं खाता और पक्षी आदि भी आग के तिनके नहीं भखतीं। और दूसरा विशेष ज्ञान वहही जिसमे कि अनन्त कालतक सुख स्वछन्दता प्राप्त होने के उपाय सूझते हैं। भूमिका में कह आये हैं कि योग विद्या शरीर साधन का एक प्रधान अङ्ग है बिना शरीर के स्वस्थ रहने से अनन्त कालिक सुख स्वच्छन्दता लाभ के उपाय नहीं हो सके इससे अनन्त कालिक सुख स्वच्छन्दता लाभके उपाय का ज्ञान तत्वज्ञान कहलाता है। वह शरीर के आधीन है इसी विचार को स्थिर करके चण्डकापालि नामक जिज्ञासु ने घटस्थ अर्थात् शरीरस्थ योग को तत्वज्ञान का कारण कहके घेरण्ड महाराज से पूछा ॥

साधुसाधु महाबाहो ! यस्मात्त्वं परिपृच्छसि ।
कथयामि हि ते वत्स ! सावधानोऽवधारय ॥३॥

घेरण्डजी ने कहा हे महाबाहो ! अर्थात् बाहुबलशालिन् क्षत्रियवंश भूषण जो तुमने मुझसे पूछा इससे मैं तुमको साधुवाद अर्थात् धन्यवाद करता हूं, हे वत्स ! मैं तुमसे कहता हूं, सावधान होके सुनो ॥

तात्पर्य्य यह कि योगियों के पास अक्सर वेही लोग आया जाया करते हैं जिनकी केवल ऐहिक चिन्ता रहती है, अर्थात् धन, मिलै, पुत्र पौत्र कुटुम्ब आदि वृद्धि हो तथा दुनिआंमें सुयश फैले परन्तु यथार्थ मांगी मङ्गल अमङ्गलकी चिन्ता करनेवाले योगियोंके निकट बहुतही कम लोग जाते हैं, फिर उक्त धन पुत्रादि लालचियों की प्रकृति जान कर ऐसे योगी भी असंख्य मिलते हैं जो ताकते रहते हैं कि कोई सोने की चिड़िया फँसे तो चैन उड़ावें, वे कृत्रिम योगी महाशय चण्डकापालि सरीखे पुरुषों के प्रश्न को ऐसा उड़ावेंगे कहेंगे कि हमारे गुरू की आज्ञा है कि किसी को मत बताना जिससे ऐसा जान पड़ता है मानो सब इन्हीं के हाथ में है पर वे ऐसे हैं जैसे हाथी के पेट का कैथा । अर्थात् देखनेमें पूरा पर भीतर कुछ भी नहीं । पहिले तो ठगों को छोड़ योग विद्या के जाननेवाले योगी ही नहीं मिलते कदाचित् कोई मिलैं भी तो उसके सीखने वाले दुर्लभ हैं ॥

यदि दैवात् कोई सत्संगी मनुष्य उनके पास गये तो वे योगी महाशय बहुत ही प्रसन्न होते हैं जैसे कि घेरंड महाराज ने चण्डकापालिको प्रश्न करनेपर धन्यवाद दिया । इससे हम यह भी यहांपर अपने पाठकों को सावधान करते हैं कि जो लोग योगाभ्यासी बने गृहस्थों के यहां मौज उड़ाते हैं और पूछने से या तो क्रोध करते हैं या कहते हैं हमारे गुरू की आज्ञा बताने की नहीं है उन पाखंडियों को कभी न समादर करै बल्कि जहा तक हो सके दण्ड दिलाने का यत्न करै ॥

घेरंड महाराज ने जब प्रश्न कर्त्ता चण्डकापालि जी के। धन्यवाद दिया तब हर्ष के वेग में सब योग का और कपट का जो सच्चा फल है उससे कहने लगे ॥

नास्तिमाया समंपापं, नास्तियोगात्परंबलं ।
नास्तिज्ञानात्परो बंधु र्नाहङ्कारात्परोरिपुः ॥४॥

माया अर्थात् झंठा प्रपञ्च (जैसे कोई २ योगी लोग यह दिखाया करते हैं कि हम योग विद्या से रांगा की चांदी, तांबाका सोना बनाया करते हैं, तथा मंत्र यन्त्र टोटका टामर के जोर से धन पुत्रादि दिया करते हैं इत्यादि बातें बना के लोगों के ठगा करते हैं) इसकी बराबर दूसरा पाप दुनियां में नहीं है। इन सब प्रपञ्च कृत पापियों का अन्त अच्छा नहीं होता वे सदा आभ्यान्तरिक निर्बल रहते हैं अर्थात् डरते रहते हैं कि न जानें किस समय हमारे प्रपञ्च का फसाद खुल पड़े, इसके व्यपरीत सचाई का बल दिखाते हैं कि "नास्तियोगात्परंबलम्" योग के परे कोई भी सच्चा बल मनुष्य का नहीं है। फिर यह बल किसके भरोसे है ? इसपर कहते हैं कि "नास्तिज्ञानात्परोबंधुः" ज्ञान ही मनुष्य का बन्धु है अर्थात् सत् असत् का बिवेक जो लोग करके कुछ काम करतेहैं उनके कार्य्य पुष्ट होते हैं। सत् असत् के बिवेक होने पर भी बहुत से मनुष्य के कार्य्य पुष्ट नहीं होते अर्थात् वे कार्य्य व्यपरीत दुखदाई होते हैं इसपर कहते हैं कि "नाहङ्कारात्परोरिपुः" अहङ्कार के परे कोई भी रिपु नहीं है जो कि सत् असत् वस्तु के बिवेक होने पर भी व्यपरीत फल है ॥

तात्पर्य यह कि बहुत से कपटी मनुष्य और ही मतलब सोच के किसी महात्मा के पास जाते हैं पर वहां कुछ और ही प्रगट करते हैं इसी प्रकार महात्मा भी और ही मतलब ठाने बैठे रहतेहैं परन्तु लोगों

को कुछ औरही धोखा देते हैं। और उनके पास कुछ ऐसे अज्ञानी मनुष्य जाते हैं जो थोड़े ही लाभ में फूल उठते हैं और वे अपने को सिद्ध समझ औरों को निरे अहमक समझ बैठ जाते हैं उनके उस अहङ्कार से आगे और सुखोत्पादक विज्ञान की उन्नति नहीं होती बल्कि जो कुछ थोड़ा बना रहता है वह भी कच्चे के कारण भद्दा हो जाता है। इससे अहङ्कार की बराबर कोई भी दुश्मन दुनिया में नहीं है। इसके उपरान्त घेरण्ड जी कहते हैं अहङ्कार छोड़ के जिस वस्तु को सिद्ध किया चाहैं उसमें अभ्यास करै, इसपर दृष्टान्त देते हैं॥

अभ्यासात्कादिवर्णानि यथाशास्त्राणिबोधयेत्।
तथायोगंसमासाद्य तत्वज्ञानंच लभ्यते॥ ५॥

जैसे अभ्यास करते २ ककरादि वर्णों चीन्ह पड़ने लगते हैं और उनके परिचय के अनन्तर नाना प्रकार के शास्त्रों में बोध हो जाता है इसी प्रकार योगाभ्यास करते २ तत्वज्ञान (जो पहिले कह आये हैं) प्राप्त हो जाता है॥

तात्पर्य यह कि अहङ्कारी मनुष्य का चित्त अभ्यास में कम लगता है, वह अपनी गुरुआईके आगे दूसरेके उपदेश पर कम विश्वास लाता है इसमें ढिलाई आ जाती है सो अहङ्कारको छोड़ कर और ढिलाई को दूर बहाय के अभ्यास में दृढ होने से योग शास्त्र का फल प्राप्त होताहै। केवल कहने से नहीं॥ इसके उपरान्त कहते हैं कि जब यह शरीर थोड़े दिन बाद जरा व्याधि से पतित हो नष्ट हो ही जायगी तब थोड़े दिन के लिये क्यों इतनी विडम्बना करैं कि सब प्रकार सांसारिक कारोबार छोड़ के एकान्त निर्जन में बैठ कर शरीर को कष्ट दें। इस पर दृष्टान्त देते हैं॥

सुकृतैर्दुष्कृतैः कार्य्यैर्जायते प्राणिनां घटः।
घटादुत्पद्यते कर्म घटीयत्रं यथा भ्रमेत् ॥ ६ ॥
ऊर्ध्वाधो भ्रमते यद्वत् घटीयत्रं गवाग्रशात्।
तद्वत्कर्म वशाज्जीवो भ्रमतेजन्ममृत्युभिः ॥ ७ ॥

भले और बुरे काम करने से प्राणियो का शरीर उत्पन्न होता है और उस शरीर से फिर कर्म उत्पन्न होते हैं जैसे कि घड़ी यन्त्र उलट पुलट कभी नीचे कभी ऊचे की ओर कलो के वश हो घूमती है इसी प्रकार उत्तम मध्यम निकृष्ट कर्मों के वश हो वह जीव भी जन्म और मृत्यु के फेर में पड़ा घूमा करता है। कहते हैं कि यदि जीव कर्म वश जन्म मृत्यु के फेर में पड़ा घूमा करता है तो फिर किस उपाय से वह मिट सक्ता है इस पर दृष्टात देते हैं ॥ -

आमं कुम्भमिवाम्भस्थो जीर्य्यमाणः सदाघटः।
योगानलेन संदह्य घटशुद्धिं समाचरेत् ॥ ८ ॥

यह शरीर ऐसा गलायमान है जैसे कच्चे घड़े में जल भरने से वह घड़ा गल जाता है। परन्तु जब उसको आग में पकाय लेते हैं तब कभी नहीं गलता इसी प्रकार इस शरीर को योग रूपी आग से अच्छी तरह पकाय के पक्की करनी चाहिये ॥

तात्पर्य्य यह कि यह शरीर मट्टी से निर्मित कच्चे घड़े के समान बना है जैसे कच्चे घड़े में पानी भरने पर जल का गुण व्याप्त होने से वह क्रमश गल के फिर मट्टी में मिल जाता है इसी प्रकार पाच तत्वो से बने शरीर में जीव पानी रूप है जब यह शुभाशुभ काम करता है तब क्रमश जरा व्याधि उत्पन्न होने से कुछ दिन बाद नष्ट हो जाता है परन्तु जैसे घड़े को आग में अच्छी तरह पकाय लेने पर उसमें कोई बा-

इसी चोट न आवे तो कभी नहीं नष्ट हो सक्ता चहै हजारों वर्ष रखिये। इसी प्रकार योग रूपी आग से (अर्थात् योगाभ्यास करके) अच्छी तरह से यदि देह को पक्की कर ले तो कभी नहीं नष्ट हो सक्ता जब तक कि कोई बाहरी आकस्मिक बाधा न आन पड़ेगी॥ इससे जो लोग जरामरणादि से बारबार जन्म लेना नहीं चाहते तथा शरीर पुष्ट कर ऐहिक विशुद्ध सुख भोग की आकांक्षा करने वालों को चाहिये कि योगाभ्यास से अपने शरीर को अवश्य विशुद्ध करैं। इसके विशुद्ध करने से जब तक चहैं इस संसार में निर्लिप्त हो विचरण करैं वा कहीं एक विशुद्ध स्थान में बैठे रहैं और जब इच्छा हो तब समाधि के द्वारा परब्रह्म में लय हो कर परम पुरुषार्थ मोक्ष पद प्राप्त कर लें। अथवा जब फिर इच्छा हो परब्रह्माश बन दिव्यातिदिव्य शरीर धारण कर संसार रूपी दावाग्नि से जलते भुनते मनुष्यों का उद्धार करैं और इसी प्रकार की योग क्रिया का संचार कर जीवनमुक्ति ज्ञान स्वरूप बनें जो इच्छा हो करैं करावें॥इति॥

अब यह बात उपस्थित हुई कि योग विद्या सीखने के पूर्व कौन २ सी सामग्री की आवश्यकता है जिसको संग्रह करके कोई साधक क्रम पूर्वक योगाभ्यास में प्रवृत्त हो उस पर प्रथम सात प्रकार के साधन कहते हैं॥

अथ सप्तसाधनं।

शोधनं दृढ़ताचैव स्थैर्य्यं धैर्य्यञ्च लाघवम्।
प्रत्यक्षं च निर्लिप्तञ्च घटस्य सप्त साधनम्॥९॥

घेरंड महाराज कहते हैं कि योगशिक्षा करने वाले के लिये शरीर के सात साधन हैं जैसे–१ शोधन (देहको शुद्ध करना) २ दृढ़ता (मजबूती) ३ स्थैर्य्य (एकसमान सर्वदा देहकास्थिर रहना) ४ धैर्य्य (घबड़ाना नहीं) ५

लाघव (हलकापन) ६ प्रत्यक्ष (आंख आदि इन्द्रियों से देखना, स्पर्श करना आदि) ७ निर्लिप्त (सब वस्तु का व्यवहार करना परन्तु मन से अलग रहना)

तात्पर्य यह कि शोधन दृढ़ता आदि सप्त साधन न करने से योगाभ्यास में पहिले तो मनही नहीं लगता, यदि च किसी, स्वभाव सिद्ध योगाभ्यासी का मन भी लगगया तो क्रम न रहने से बीच में कोई २ स्थल ऐसा आन पड़ने का संयोग हो जाया करता है जिस्से इधर उधर कुछ नहीं सूझ पड़ता और विरक्तता आ जाती है बस सब कुछ नष्ट हो जाता है इस्से ये सप्त साधनही योग शास्त्र के मूल समझे जाते हैं पक्के योगी इन्हीं से चीन्हे जाते हैं जो कि सप्त साधन संपन्न हैं । अब सप्त साधन किस २ कर्म से और किस २ वस्तु से होते हैं उनका वर्णन करते हैं ॥

षट्कर्मणाशोधनञ्च आसनेनभवेद्दृढम् ।
मुद्रयास्थिरताचैव प्रत्याहारेणधीरता ॥१०॥
प्राणायामाल्लाघवञ्च ध्यानात्प्रत्यक्षमात्मनि ।
समाधिनानिर्लिप्तंच मुक्तिरेवनसंशयः ॥११॥

१ शोधन छः कर्मों से होता है । २ आसनों से दृढ़ता होती है, मुद्राओं से स्थिरता, प्रत्याहार से धैर्य । प्राणायाम से लाघव, ध्यान से अपने आत्मा में जो चाहै प्रत्यक्ष हो जाता है । इसीप्रकार समाधि के द्वारा निर्लिप्तता अर्थात् वासना रहित हो जाता है । इसीप्रकार साधनो से अन्त में अवश्य मुक्ति हो जाती है इसमें संशय नहीं है । अब उन सप्त साधनो में प्रथम शोधन जो षट्कर्मों से होता है उन षट्कर्मों को कहते हैं ॥

अथ षट्कर्माणि ॥

धौतिर्वस्तिस्तथा नेति लौलिकी त्राटकं तथा ।
कपालभातिश्चैतानि षट्कर्माणि समाचरेत् ॥१२॥

जिन छे कर्मो से शोधन होता है वे ये हैं जैसेः–१ धौति २ वस्ति ३ नेति ४ लौलिकी ५ त्राटक ६ कपालभाति ॥

तात्पर्य्य यह कि इन छः कर्मो के द्वारा देह शुद्ध हो कर चेतनाको चमत्कारी हो जाती है, यह शरीर मल से परिपूर्ण है, जिन २ अङ्गों में जिन २ नाड़ियो में रोमकूपों में चर्मपेशियों में तथा अस्थि बन्धनो में जब मल लिपटा रहता है तब अङ्ग शिथिल रहते हैं । नाड़ियां शुद्ध चालने रहित दशी चलती है । रोमकूपो में से भीतरी दुष्ट वायु निकलने नहीं पाती बाहरी निमल वायु घुसने नहीं पाती, चमड़ा फटा रूखा रूक्ष खाज फोड़ा फुन्सी आदि से दूषित रहता है, इसी प्रकार पेशिया ठीक २ लचक मचक नहीं रहती तथा अस्थि बन्धन भी हाड़ियो को जकड़े रहते है, यदि कभी शीघ्र गमनादि परिश्रम पड़ा तो पीड़ा उत्पन्न होती है इत्यादि कारणो से शरीर के बाह्याभ्यन्तरिक मल का शुद्ध होना बहुत ही आवश्यक है, इसी लिये शरीर के बाह्याभ्यन्तर मल शुद्ध करने के लिये योगाभ्यासी लोग छः कर्म निर्द्धारित कर लिये हैं । अब इन छ' कर्मों में धौति का वर्णन करते हैं ॥

अथ धौतिः ॥

अन्तर्द्धौतिर्दन्तधौति र्हृद्धौतिर्मूलशोधनम् ।
धौतिंचतुर्विधांकृत्वा घटंकुर्वन्ति निर्मलम् ॥१३॥

धौति चार प्रकार की है, १ अन्त धौति (शरीर के भीतर साफ

करना) २ दन्त धौति (दांतों को साफ करना) ३ हृद्धौति (हृदय को साफ करना) ४ मूल शोधन (नाभि शुद्धि) इस चार प्रकार की धौति से शरीर को निर्मल करना चाहिये ॥

अन्तर्धौतिः ।

वातसारं, वारिसारं, वन्हिसारं, बहिष्कृतम् ।
घटस्य निर्मलार्थाय अन्तर्धौतिश्चतुर्विधा ॥१४॥

धौति भी चार प्रकारी की है। १ वातसार (वायु त्यागना) २ वारिसार (जल त्यागना) ३ वन्हि सार (आगे कहेंगे) ४ बहिष्कृत (यह भी आगे कहेंगे) अब इन चारो में पहिले वात सार का विधान कहते है ॥

अथ वातसारः ।

काक चञ्चुवदास्येन पिबेद्वायुं शनैः शनैः ।
चालयेदुदरं पश्चाद्वर्त्मना रेचयेच्छनैः ॥१५॥

अपने मुह को कौवे की टोट के समान बनावे अर्थात् दोनो ओठों को सिकोड़ कर कौवे की टोट सी करे और धीरे २ वायु पान कर के पेट में उस वायु को चलावे फिरावे पश्चात् फिर धीरे २ उसी को मुंह के द्वारा छोड़े इसी क्रिया को वातसार कहते हैं। इसका फल जो वैद्यक शास्त्र से सम्बन्ध रखता है यह घेरण्ड महाराज कहते हैं।

वातसारं परंगोप्यं देह निर्मल कारणम् ।
सर्वरोग क्षयकरं देहानल विवर्द्धकम् ॥१६॥

यह परम गोप्य वातसार कर्म देह निर्मल करनेवाला, सर्व रोग नाशक, और देह की अग्नि बढ़ानेवाला है ॥

तात्पर्य यह कि घेरण्ड जी कहते हैं हे दण्डकापालि ! इस वातसार कर्म को योगी लोग परम गोप्य कहते हैं परन्तु हमने तुम से छिपाय नहीं रक्खा क्योंकि यदि छिपावैंगे तो हम कपटी योगी ठहरेंगे । क्योंकि हमारी वासना अब स्वार्थ साधन की नहीं रही यह स्वार्थ साधक लोगही गोप्य कहके किसीसे नहीं बताते, यदि घेरण्ड महाराजही यथार्थ गोप्य माने रहते तो क्यों दण्डकापालि से झटपट कह देते याने बिना सेवा टहल के एकही दिन की बात चीत से कह चले ? इससे सिद्ध हुआ कि सच्चे योगियों की ओर से यह योग विद्या गोप्य नहीं रहनी चाहिये परन्तु प्रथमेसरे स्वार्थ परायण योगियों की प्रकृति को दर्शाय के घेरण्ड महात्मा ने हँसकर, "वातसारपरंगोप्यं" ऐसा कहा है । और सर्व रोग क्षयकर इत्यादि से साफ जाहिर है कि वैद्यक विद्या से सम्बन्ध रखता है ।

अथ वारिसारः ।

आकंठंपूरयेद्वारि वक्त्रेण च पिबेच्छनैः ॥
चालयेदुदरेणैव चोदराद्रेचयेदधः ॥ १७ ॥

मुख से धीरे २ कण्ठ पर्यन्त खूब पानी पीवे फिर उसको उदर में घुमावे फिरावे और उसको अधोमार्ग अर्थात् गुदा द्वारा रेचन करै, इस को वारिसार कहते हैं ॥

वारिसार परंगोप्यं देह निर्मल कारकम् ।
साधयेत्तं प्रयत्नेन देव देहं प्रपद्यते ॥ १८ ॥

वारिसार को पहिले की तरह परमगोप्य कहा जाता है यह देह को निर्मल करनेवाला है इसको बड़े यत्न से साध करना चाहिये इसके साधन से देव देह प्राप्त होता है ॥

परम गोप्य का तात्पर्य यह है कि यह क्रिया बड़ी कठिन है झट

पट सब से नहीं हो सक्ती। बहुत से लोग ऐसे कठिन कार्य्य दो चार दिन करके आलस्य वश छोड़ देते हैं और फिर कहा करते है कि झूठा गपोड़ा है। इस प्रकार के लोगों से एक उपकारी वस्तु की महिमा नष्ट हो जाती है। इस लिये सिवाय अधिकारी के और किसी को झट पट नहीं बताना यह भी घेरण्डजी का गूढ़ तात्पर्य है परन्तु सब किसी से गोप्य नहीं है। यह पक्का सिद्धान्त है॥

अथ अग्निसारः।

नाभिग्रन्थिं मेरुपृष्ठे शतवारं च कारयेत्।
अग्निसारमियंधौति योगिनां योगसिद्धिदा॥१९॥
उदरामयजं त्यक्त्वा जठराग्निं विवर्द्धयेत्॥२०॥
एषाधौतिः परागोप्या देवानामपि दुर्लभा।
केवलं धौति मात्रेण देवदेहो भवेद्ध्रुवम्॥२१॥

नाभी की ग्रंथि को सौ बार मेरु पृष्ठ में संलग्न करै अर्थात् पेट को ऐसा सलावे कि नाभी घुम कर जाके पीठ की हड्डी में लग जाय करै। यह अग्निसार धौति कही जाती है। जो कि योगियोंको योगकी सिद्धि देनेवाली है। यह पेट के रोगों को दूर करके जठराग्नि को बढ़ाती है और यह भी पूर्ववत् परम गोप्यहै और देवताओंको भी दुर्लभहै। और कुछ करै चहे नहीं परन्तु केवल इसी धौति से देव देह निश्चय हो जाता है। तात्पर्य यह कि रोगी कभी नहीं होगा॥

अथ वहिष्कृत धौतिः।

काकीमुद्रां शोधयित्वा पूरयेदुदरं महत्।
धारयेदर्द्ध यामन्तु चालयेदधो.वर्त्मना॥२२॥
एषाधौतिः परागोप्या न प्रकाश्याकदाचन॥२३॥

पहिले कौवे की टोट के समान मुह कर के ऐसी वायु पान करै जिसे उदर पूर्ण हो जावे फिर उसी वायु को उदर में आधे पहर तक रक्खे पश्चात् गुदा के द्वारा बाहर करै। यह भी धौति परम गोप्य है इस को कभी किसी जैसे तैसे से नहीं प्रकाश करना क्योंकि बिना दृढता किया सधैगी नहीं झूठी कहके निन्दा करने लगैगा। परन्तु दृढ से तो अवश्य कहना॥

अथ प्रक्षालनम्।

नाभिमग्नोजलेस्थित्वा शक्तिनाडींविसर्जयेत्।
कराभ्यां क्षालयेन्नाडीं यावन्मल विसर्जनम्॥
तावत्प्रक्षाल्य नाडीं च उदरे वेशयेत् पुनः॥२३॥
इदं प्रक्षालनं गोप्यं देवानामपि दुर्लभम्।
केवलं धौति मात्रेण देवदेहो भवेद्ध्रुवम्॥२४॥

नाभी डूब जावे ऐसे गहिरे जल में खड़ा हो के शक्ति नाडी अर्थात् पेट की त्रिवली बड़ी अतड़ी को बाहर करके जब तक मल साफ न हो तब तक खूब धोवे बाद साफ होने के फिर पेट के भीतर बैठार ले यह प्रक्षालन विधि गोपनीय है और देवताओं को को दुर्लभ है, केवल इस धौति से ही निश्चय देव देह हो जाता है॥

अथ वहिष्कृतधौति प्रयोगः।

यामार्द्धं धारणे शक्ति यावन्न धारयेन्नर।
बहिष्कृत महद्धौति स्तावच्चैव न जायते॥२५॥

जब तक साधक आधे पहर तक श्वास रोकने की शक्ति न प्राप्त कर ले तब तक यह महद्धौति क्रिया का करना उचित नहीं है, क्योंकि इस शक्ति के बिना अनिष्ट होने का डर रहता है॥

अथ दन्तधौतिः।

दन्तमूलं जिह्वामूल रंध्रञ्चकर्णयुग्मयो।
कपालरंध्रपञ्चैते दन्तधौतिर्विधीयते ॥२६॥

दन्त धौति पांच प्रकार की है जैसे-१ दांतों की जड़ को धोना, २ जिह्वा की जड़ को धोना ३। ४ कान के दोनों छेदों को धोना, ५ तथा कपाल के रंध्र को धोना॥

दन्तमूलधौतिः।

खादिरेणरसेनाथ मृत्तिकयाचशुध्दया।
मार्जयेद्दन्तमूलंच, यावत्किल्बिषमाहरेत ॥२७॥

खैर के रस से अथवा विशुद्ध सूखी मृत्तिका से दांतों की जड़ को साफ करै और जब तक मैल न साफ हो तब तक कुल्ला कर २ फिर २ साफ करै॥

दन्तधौतिकाफल।

दन्तमूल पराधौति योगिनां योग साधने।
नित्यंकुर्यात्प्रभाते च दन्तरक्षाञ्चयोगवित् ॥२८॥
दन्तमूलंधावनादि कार्येषु योगिनांमतम्।

योगियों के योग साधन में दन्तमूल धौति अर्थात् दांत का धोना, सब से उत्तम कार्य्य है। इस्से योग के जाननेवाले मनुष्य प्रतिदिन प्रातःकाल दांतों की रक्षा को किया करैं दन्तधावन अर्थात् दातून आदि का करना योगियों का मुख्य काम है॥

तात्पर्य्य यह कि दांतों से और मन से ऐसा भारी सम्बन्ध रहता है कि यदि दांत में मैल रहता है तो उससे एक प्रकार की दुर्गन्धि पैदा होती है जो मस्तिष्क में लग कर बुद्धि को भ्रष्ट करडालती है, तथा नाना प्रकार के रोग उत्पन्न कर शरीर को शिथिल करडालती है, इसके प्रत्यक्ष लक्षण यह है कि जब दांतों के बीच में कोई वस्तु जैसे आमका रेशा वगैरा हैं कभी अटक जाते तो जब तक नहीं निकलते तब तक जिह्वा विकल रहती है उसी पर लुरकुराया करती है। इससे और मन बेचैन रहता है दूसरी बात यह कि योगाभ्यास से आयु की वृद्धि होती है अर्थात् योग बल से योगी लोग हजारों वर्ष जीते हैं जीवन पर्य्यन्त इन्द्रिया विनष्ट न हो इसलिये उनके रक्षाकी उपाय अवश्य करनी चाहिये। इसीसे दांत की जड़ को योगी लोग साफ रखने की क्रिया को योग साधन कह गये हैं। वास्तविक यह क्रिया सब के लिये उत्तम है और आरोग्यता का एक अङ्ग है।

जिह्वा शोधन।

अथातःसंप्रवक्ष्यामि जिह्वाशोधनकारणम्।
जरामरणरोगादीन् नाशयेद्दीर्घलम्बिका ॥२९॥

घेरण्ड महाराज कहते हैं कि दन्त शोधन के पश्चात् जिह्वा शोधन कहते हैं। जिह्वा के शोधन से जीभ लम्बी हो जाती है जिससे कि जरा (बुढ़ाई) मरण तथा और २ रोग नष्ट हो जाते हैं॥

जिह्वा मूल धौतिः।

तर्जनीमध्यमानामा अङ्गुलित्रय योगतः।
वेशयेद्गल मध्येतु मार्जयेल्लम्बिकामूलं॥
शनैः शनैर्मार्जयित्वा कफदोषं निवारयेत् ॥३०॥

तर्जनी (अँगूठे के पास की अँगुली) मध्यमा (बीच की अंगुली) अनामिका (अँगूठे से चौथी) ये तीन अँगुलियोंका गलेके भीतर प्रवेश करै और जिह्वा की जड़ तक बार २ घस्से लगा कर धीरे २ जो कुछ कफ का दोष हो उसे साफ करै। फिर इस्से कफ मात्र निकल जाता है॥

मार्जयेन्नवनीतेन, दोहयेच्च पुनः पुनः।
तदग्रं लौहयन्त्रेण कर्षयित्वा शनैःशनैः॥३१॥

फिर नवनीत (नैनू) को जिह्वा में लगा, कर रोज २ बार २ दुहे और फिर लोहे के चिमटे से उसी जीभ का अग्र भाग पकड़ के धीरे २ रोज खींचा करै॥

नित्यंकुर्यात् प्रयत्नेन रवेरूदयकेस्तके।
एवंकृतेचनित्येच लम्बिकादीर्घतांव्रजेत्॥३२॥

प्रति दिन सूर्य के उदय और अस्त समयमें यह धौति का अभ्यास करै यदि इसी प्रकार नित २ यह क्रिया की जावे तो जीभ लम्बी हो जावेगी॥

तात्पर्य यह कि मधुर कषाय आदि षट्रसोंका स्वाद, इसी जिह्वा के द्वारा अनुभव होता है, और उनका जो गुण दोष है वह भी सारे वायु रस जीभ की शिराओं के द्वारा समस्त नाड़ियों में झट पट व्याप्त होता है और वह रक्त में मिल कर या तो रोगादि उत्पन्न करता है, या मज्जा मास उत्पन्न कर के शरीर को मोटा कर देता है जिस्से कि मनुष्य सारे मज्जा मासके चलनेफिरनेकी शक्तिसे भी विहीन हो निकम्मा सा हो जाता है। सो इस क्रिया के द्वारा जीभके शिरा कठोर पड़ जाते हैं और जो कुछ मधुर कषायादि रस खाता है वह झटपट नाड़ियों में गमन न करके आमाशय में जा थँमता है और वहां पित्त रस के संयोग

से पच कर क्रम से सार भाग आकर्षक नाड़ियोंके द्वारा समस्त शरीर में व्याप्त होता है और वायु तथा जलका लेश उस रसके साथ नहीं जाता इससे वह पुरुष बल पौरुष में सब मोटे मनुष्योंसे अधिक होता है और उसके अङ्ग कड़े रहते हैं। फुर्ती बनी रहती है और सहसा रोगोंसे भय नहीं रहता। इसी लिये योगी लोग दीर्घ जीवी भी हो सक्ते हैं और दूसरी बात यह है कि बिना जीभ को लम्बा किये योगी लोग अमृत पान नहीं कर सक्ते जिसकी क्रिया आगे कहेंगे ॥

कर्ण धौतिः।

तर्जन्यानामिकायोगान्मार्जयेत्कर्ण रंध्रयोः।
नित्यमभ्यास योगेन नादान्तरं प्रकाशयेत् ॥३३॥

तर्जनी और अनामिका अँगुली के योग से कानो के दोनो छेदो को प्रति दिन साफ करै तो एक प्रकार का विशुद्ध नाद प्रगट हुआ करता है ॥

तात्पर्य यह कि एक तो कर्ण में मल नहीं रह जाता जिस्से कि बधिरादि अथवा कर्ण मूलादि रोग उत्पन्न होतेहैं। दूसरी बात यह भी है कि मृत्यु के कुछ दिन पूर्व ही जो अव्यक्त नाद सुनाई पड़ता है वह भी परिज्ञात हो जाता है। जिस्से कि मनुष्य अपनी मृत्यु जान कर उत्तम कर्म उत्तम स्थान या उत्तम समय का आश्रय ले सक्ता है ॥

कपाल रंध्र शोधन।

वृद्धाङ्गुष्ठेन दक्षेण मार्जयेद्भाल रंध्रकम्।
एवमभ्यास योगेन कफदोषंनिवारयेत् ॥३४॥

नाडीनिर्मलतांयाति दिव्यदृष्टिःप्रजायते ।
निद्रांतेभोजनान्तेच दिनान्तेचदिनेदिने ॥३५॥

दहिने हाथ के अंगूठे के द्वारा प्रतिदिन सोय के उठे तब भोजन के अन्त में, तथा सूर्यास्त समय में, कपाल रन्ध्र अर्थात् शिर के बीच में जो गढ़्ढा रहता है उसे जलही से साफ करै। इस प्रकार के अभ्यास से भीतरी कफ का दोष नष्ट हो जाता है । नाडियां निर्मल हो जाती हैं और दिव्य दृष्टि होती है अर्थात् बहुत दूर तक देखने की शक्ति बढ़ जाती है॥

हृद्धौतिः (हृदय शोधन) ।

हृद्धौतिंत्रिविधांकुर्यात् दंडवमनवाससा ॥३६॥

हृद्धौति अर्थात् हृदय साफ करने की विधि तीन प्रकार से है. १ दण्ड धौति २ वमन धौति, ३ वास धौति ॥

रंभादण्डं हरिद्राया वेत्रदण्डतथैवच ।
हृन्मध्येचालयित्वातु पुन प्रत्याहरेच्छनै ॥३७॥

केला के बीच का सार भाग उसका दण्ड या हरिद्री के पेड़ का दण्ड अथवा चीकने बेत का दण्ड बनाय के हृदय के बीच धीरे २ प्रवेश करके फिर धीरे २ बाहर किया करै । इसी का हृद्धौति कहते है ॥

दण्ड धौति ।

कफपित्तंतथाक्लेदं रेचयेदूर्ध्ववर्त्मना ।
दण्डधौतिविधानेन हृद्रोगं नाशयेद्ध्रुवम् ॥३८॥

इस दण्ड धौति के करने से, कफ पित्त तथा क्लेद (खँखार) आदि विकारी मल मुह के द्वारा हृदय से निकल बाहर होते हैं, जिस्से कि हृदय के समस्त रोग निश्चय नष्ट हो जाते हैं॥

वमन धौति।

भोजनांतेपिवेद्वारि आकंठपूर्णितंसुधीः।
ऊर्ध्वंदृष्टिंक्षणंकृत्वा तज्जलंवमयेत्पुनः॥
नित्यमभ्यासयोगेन कफपित्तंनिवारयेत्॥३१॥

बुद्धिमान पुरुष भोजन के अन्त में कण्ठ पर्यन्त जलपिये फिर थोड़ी देर तक ऊपर की ओर ताकता रहे फिर थोड़ी देर के बाद उसी जल को वमन कर डाले इसी को वमन धौति कहते हैं। इस वमन धौति का प्रतिदिन अभ्यास करने से कफ और पित्त नष्ट हो जाते हैं॥

विवेचना।

वमन करने में ऐसा अभ्यास करै जिस्से अन्न न गिरनेपावे केवल जल मात्र गिरे और भोजनान्त से भोजन के उपरान्त ही वमन नहीं करना समझे रहना ४।५ घटे बाद चाहिये तात्पर्य यह है कि खाली पेट में वमन न करे॥

जब जल पीके आकाश की ओर ताके और वमी करने लगे, यदि जल न गिरे तो किञ्चित् अँगुली डालकर गिराय दे। इसी प्रकार अभ्यास करते २ फिर आपही गिरने लगैगा॥

जब जल पीकर ऊपर ताके तब कुछ १० मिनिट इससे अधिक नहीं इत्यादि और २ भी बातें सोच ले॥

वासधौतिः ।

चतुरङ्गुल विस्तारं सूक्ष्मवस्त्रं शनैर्विशेत् ।
पुनः प्रत्याहरेदेतत् प्रोच्यते धौतिकर्मकम् ॥४०॥

चार अङ्गुलका चौड़ा और कमसे कम ५ हाथ लम्बा महीन कपड़ा लेकर धीरे २ निगल जावे, और फिर उसको धीरे २ निकाल बाहर करै, इसी को वास धौति कहते हैं ॥

गुल्मज्वर प्लीहकुष्ठं कफपित्तं विनश्यति ।
आरोग्यं बलपुष्टिश्च भवेत्तस्य दिनेदिने ॥४१॥

वास धौति अभ्यास करने से गुल्मरोग, प्लीहारोग कुष्टरोग, तथा कफ और पित्त रोगों का नाश होता है और अभ्यास करने वाले को आरोग्य बल पुष्टि ये सब शारीरक सुख दिन २ मिलते हैं ॥

तात्पर्य्य–जो नाना प्रकार के पदार्थ भोजन किये जाते हैं उनमें से एक प्रकार का चेप्हा युक्त लार पैदा होता है जो थोड़े दिन बाद गाढ़ा हो कर नाड़ियों का मुख रोक लेता है । और अन्न रस शरीर संचारी नहीं हो कर मल मूत्र के द्वारा निकल जाता है जिस अन्न रस से, शुक्र बनता है, जब अन्न रस शरीर सञ्चारी नहीं होने पाता तो शुक्र कम हो जाता है, इससे शरीर दुर्बल (कमज़ोर) हो जाता है, परन्तु इस वास धौति के द्वारा वह लार या चप्हा रोज २ निकल बाहर होता है नाड़ी मुख साफ रहता है, बस शुक्र की वृद्धि अनायास होती है और वह शुक्र पुष्ट होता है, जिससे शरीर में कान्ति बल आदि उपरोक्त समस्त आरोग्यता भी आपही आप प्राप्त होती है ॥

मूलशोधन ।

अपान क्रूरता तावद्यावन्मूलं न शोधयेत् ।
तस्मात्सर्वं प्रयत्नेन मूल शोधनमाचरेत् ॥४२॥

जब तक मूल शोधन अर्थात् गुह्य द्वार साफ नहीं होता तब तक अपानवायुकी क्रूरता अर्थात् कड़ापन बनारहताहै । और गुह्यसे वायु कष्ट से निकलता है । इससे सब प्रकारके यत्नसे मूल शोधन करना उचितहै ॥

पीतमूलस्य दण्डेन मध्यमाङ्गुलिनापिवा ।
यत्नेन क्षालयेत् गुह्यं वारिणाच पुनःपुनः ॥४३॥

कच्ची हलदी की जड़ से वा मध्यमा अंगुली से बार २ यत्नके सहित जल द्वारा गुह्य द्वार साफ करना चाहिये ॥

वारयेत्कोष्ठकाठिन्यमामाजीर्णं निवारयेत् ।
कारणंकान्तिपुष्ट्योश्च दीपनंवह्निमण्डलम् ॥४४॥

मूल शोधन के द्वारा कोष्ठ काठिन्य अर्थात् पेट के भीतर कड़ापन तथा आम की अजीर्णता विनष्ट होती है इसी प्रकार देह की कांति शरीरकी पुष्टता और जठराग्नि की वृद्धि होती है ॥

तात्पर्य—बहुत से वायु प्रकृति के मनुष्य होते हैं जिनका कोठा हर दम कड़ा रहता है और कब्ज की शिकायत बनी रहतीहै फिर यहांतक होता है कि कभी २ वायु सरन भी नहीं होता जिससे आम या अजीर्ण हो जाया करता है और अन्त में ज्वर से भी पीड़ित हो कर सदा कष्ट पाया करते हैं परन्तु ऐसे मनुष्य यदि मूल शोधनादि क्रिया से शरीर आरोग्य किया करें तो सब कष्ट निवृत्त हो सक्ते हैं । यहां पर एक बात

असभ्यता की भी कही जाती है पाठक गण क्षमा करैंगे । अक्सर ऐसेभी मनुष्य देखे गये हैं कि जो योग विद्या मे आलसी होकर कष्ट के कारण कुकर्म द्वारा पीड़ादि निवारण किया करते हैं। अर्थात् गुदा मैथुन कराय के चैन का मार्ग निकाल लेते हैं । इस कर्म में ऐय्याश और मोटी तोंद वाले धनी अक्सर होते हैं। देखिये यह कैसा अन्याय कार्य है । अन्याय के सिवाय उनकी अंतड़ियां इसी कर्म से कमजोर हो जाती हैं और झट पट नर्क गामी भी हो जाते हैं । इसी निमित्त घेरंड महा मुनि ने यह योग क्रियां निकाली है जिसमें रोग शांति और निर्मल बुद्धि आदि अनेक गुणहैं, जिनके,यह उपरोक्त शिकायतहो वे अवश्य इस क्रियाको साधनकरैं॥

अथ वस्ति प्रकरणम् ॥

जलवस्तिःशुष्कवस्तिर्वावस्तिःस्याद्द्विविधास्मृता।
जलवस्तिं जलेकुर्याच्छुष्कवस्तिं सदाक्षितौ ॥४५॥

वस्ति दो प्रकार की है—जल वस्ति और शुष्क वस्ति, जलवस्ति जल से, तथा शुष्क वस्ति स्थल में साधन करना चाहिये ॥

जलवस्तिकीविधि ॥

नाभिमग्न जलेपायुं न्यस्तवानुत्कटासनं ।
आकुञ्चनं प्रसारञ्च, जलवस्तिं समाचरेत ॥४६॥

नाभी डूब जावे ऐसे जलमें बैठ कर उत्कट आसन बैठ कर गुदादेश को सिकोड़े और फैलावे । इसी को जलवस्ति कहते हैं । (उत्कट आसन आसनों के प्रकरण में देखो)

वस्तिकाफल ॥

प्रमेहञ्च उदावर्तं, क्रूरवायुं निवारयेत् ।
भवेत्स्वच्छंद देहश्च, कामदेव समोभवेत् ॥४७॥

जल वस्ति के साधन से प्रमेह रोग उदावर्त रोग (१३ रोग हैं) क्रूर वायु (जो बड़ी कठिनता से वायु छूटता है) रोग नष्ट होते हैं, और साधक स्वच्छ शरीर (देह काबू में रहै) तथा कामदेव की भांति रूपवान (देह में कान्ति आ जाती है) हो जाता है ॥

दूसरी स्थल वस्ति

वस्तिंपश्चिमोत्तानेन चालयित्वा शनैरधः ।
अश्विनी मुद्रयापायु माकुञ्चयेत्प्रसारयेत् ॥४७॥

स्थलही में पीठ की ओर उत्तान हो कर पड़े और क्रमश गुह्य के द्वार को चलावे इसी प्रकार अश्विनी मुद्रा (आगे मुद्रा प्रकरण देखो) के द्वारा गुह्य को सिकोड़े और फैलावे, ऐसा करने से स्थल वस्ति साधी जा सक्ती है ॥

फल ॥

एवमभ्यास योगेन कोष्ठदोषं न विद्यते ।
विवर्द्धयेज्जाठराग्नि मामवातं विनाशयेत् ॥४९॥

इसी प्रकार स्थल वस्ति साधना करने से कोष्ठ में दोष नहीं रह जाते और उदर की अग्नि बढ जाती, तथा आमवातरोग भी नष्ट हो जाता है ॥

इति वस्ति प्रकरणम् ॥

— • —

अथ नेतियोगः ॥

बितस्तिमान सूक्ष्मसूत्रं, नासानाले प्रवेशयेत् ।
मुखान्निर्गमयेत् पश्चात् प्रोच्यते नेतिकर्मकम् ॥५०॥

पीताम्बर का महीन डोरा नाक के छेदो में डालकर पीछे उसे मुख की ओर निकाल लिया करै। इसको नेतिकर्म कहते हैं ॥

फल ॥

साधनान्नेतिकर्माणि खेचरी सिद्ध माप्नुयात् ।
कफदोष विनश्यन्ति दिव्यदृष्टिः प्रजायते ॥५१॥

नेति कर्म साधन करने से खेचरी सिद्धि हो जाती है अर्थात् कफ दोष नष्ट हो जाता है और दिव्य दृष्टि हो जाती है। जिससे आकाश की बहुत सी वस्तुएँ देख पड़ती हैं॥

तात्पर्य-एक प्रकार का कफ नासिका में जमा करता है और जब वह बहुत जम जाता है तब उस कफ के रेशे बढ़ते २ आख तक जा पहूचते हैं, जिससे कीचड़ आने लगता है और फिर वेही कफ के रेशे आख में फैल कर माड़ा बन छाय लेते हैं फिर आख ज्यों की त्यों बनी रहने पर भी नहीं देख पड़ता उसी माड़ा को अर्थात् कफ के जाला को भाख बनाने वाले नहन्नो से खोद कर निकाल लेते हैं वह जाला मज-बूत भी हो जाता है अर्थात् आख मीजने या धोने से नहीं फटता न हटता फिर यह योग इसको साफ नष्ट कर डालता है ॥

लौलिकी योग ॥

अमन्सवेगेतुन्दञ्च भ्रामयेदुभपार्श्वयोः ।
स रोगा न्निहन्तीह देहानल विवर्द्धनम् ॥५२॥

अति प्रबल वेग से पेट के दोनों बगल घुमावे, इसी का नाम लौलिकी योग है यह योग सब प्रकार के रोगों को नष्ट करता है और देह की अग्नि को बढ़ाता है अर्थात् क्षुधा बहुत लगती है, और जो भोजन किया जाता है वह पच जाता है ॥

त्रोटक योग ॥

निमेषोमेन्पकं त्यक्त्वा सूक्ष्मलक्ष्यं निरीक्षयेत् ।
यावदश्रूणि पतन्ति त्रोटकं प्रोच्यते बुधैः ॥५३॥

पलक का मारना बन्द करके किसी सूक्ष्म वस्तु की ओर जब तक आंसू न गिरें एक टक देखता रहे इसी को त्रोटक योग कहते हैं ॥

फल ।

एवमभ्यास योगेन शाम्भवी जायते ध्रुवम् ।
नेत्र रोग विनश्यन्ति दिव्य दृष्टि प्रजायते ॥५४॥

इसी प्रकार त्रोटक योग का अभ्यास करने से शाम्भवी मुद्रा सिद्ध हो जाती है अर्थात् एक टक अनिमेष देखने का अभ्यास यहां तक बढ़ जाता है कि चाहे जितनी देर तक बिना पल मारे ताकते रहो । इससे इतनाही नहीं बल्कि नेत्र के समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं और दिव्य दृष्टि भी हो जाती है अर्थात् बहुत सूक्ष्म २ वस्तु भी देख पड़ने लगती है ॥

तात्पर्य—यह कि जैसे चश्मा लगाने से छोटी वस्तु बड़ी सी देख पड़ती है उसी प्रकार इसके अभ्यास का भी फल है ॥

कपाल भाति योग ।

वातक्रमेणव्युत्क्रमेण शीतक्रमेणविशेषतः ।
भालभातिंत्रिधांकुर्यात् कफदोषंनिवारयेत् ॥५५॥

कपाल भाति योग तीन प्रकार का है । वातक्रम व्युतक्रम, तथा शीतक्रम । इसके साधन से कफ के संपूर्ण दोष नष्ट होते हैं ॥

वातक्रम कपाल भाति ।

ईडयापूरयेद्वायुं रेचयेत्पिंगलांपुनः ।
पिंगलयापूरयेद्वा पुनश्चंद्रेणरेचयेत् ॥५६॥

ईडा और अर्थात् नाक के बायें छेद के द्वारा वायुको खींचके भरे और पिंगला अर्थात् दहिने छेद से निकाले । इसीप्रकार दहिने छेद से वायु पूरण करे और फिर बायें छेद से निकाले ॥

पूरकंरेचकंकृत्वा वेगेननतुचालयेत् ।
एवमभ्यासयोगेन कफदोषंनिवारयेत् ॥५७॥

जब पूरक या रेचक करे अर्थात् स्वास खींचे और छोड़े तब जल्द बाजी न करे क्रम से धीरे २ साधे इसी प्रकार अभ्यास योग करनेसे कफ दोष समस्त नष्ट हो जाते हैं ॥

व्युत्क्रमकपाल भाति ।

नासाभ्यांजलमाकृष्य पुनर्वक्त्रेणरेचयेत् ।
पायंपायंव्युत्क्रमेण श्लेष्मादोषंनिवारयेत् ॥५८॥

दोनों नाक के छेदों से जल को खींच कर फिर मुंह की राह से गिराता जावे और मुंह की राहसे भी जल पी २ कर नाक की राह गिरावे इसी को व्युत्क्रम कपाल भाति कहते हैं । यह कफ के समस्त दोषों को नष्ट करती है । यह क्रिया बहुत ही कठिन है और बड़े अभ्यास से सिद्ध हो सक्ती है, नहीं तो मुख से पानी पीकर नासिका से गिराना और नाक से पीकर मुंह से गिराना हो ई नहीं सक्ता । बल्कि पिया हुआ पानी पेट में चला जाता है इसलिये सावधानी से करना ।

शीत्क्रम कपाल भाति ।

शीत्कृत्यपीत्वावक्त्रेण नासानालैर्विरेचयेत् ।
एवमभ्यासयोगेन कामदेवसमोभवेत ॥५९॥
नजायतेचवार्द्धक्यं, जरा नैव प्रजायते ।
भवेत्स्वच्छन्ददेहश्च कफदोषनिवारयेत् ॥६०॥

मुख से शीत्कार कर (सुरक कर) पानी पीवे और उसे नाक के छेदों से गिराय दे, इसको शीत्क्रम कपाल भाति कहते हैं । इस प्रकार योगाभ्यास करने से मनुष्य कामदेव की तरह सुन्दर हो जाता है और बुढ़ाई तथा बुढ़ापे की निर्बलता उसके शरीर में कभी नहीं आ सक्ती । फिर देह अपने काबू में रहती है और कफ के जितने दोष हैं सब नष्ट हो जाते हैं ॥

इतिश्री घेरण्डसंहितायां घेरण्डचण्डकापालि सम्वादे
षट् कर्म साधन नाम प्रथमोपदेशः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोपदेशः

अब आसनों की बिधि कहते हैं।

आसनानि समस्तानि यावन्तो जीवजन्तवः।
चतुरशीति लक्षाणि शिवेन कथितं पुरा ॥१॥
तेषांमध्ये विशिष्टानि षोड़शोनं शतं कृतम्।
तेषांमध्ये मर्त्यलोके द्वात्रिंशदासनंशुभम् ॥२॥

घेरण्ड महाराज ने कहा कि पृथ्वी में जितने जीव जन्तु हैं उतने ही आसन भी हैं। शास्त्रकारों ने औसत दर्जे चौरासी लाख योनि संख्या ठहराया है इसी से प्रथम महादेव जी चौरासी लाख आसन कह भी चुके हैं। परन्तु उनके बीच सौ सोला कम में अर्थात् चौरासी आसन श्रेष्ट हैं। उनमें भी केवल बत्तीस आसन मनुष्य लोक के लिये शुभ हैं बाकी ५२ आसन देव लोक के लिये कहे गये हैं॥

आसनों के भेद।

सिद्धं, पद्मं, तथा भद्रं, मुक्तं, वज्रञ्च स्वस्तिकम्।
सिंहं, च गोमुखं, वीरं, धनु, रासन मेवच ॥३॥
मृतं, गुप्तं, तथा मत्स्यं, मत्स्येन्द्रासन मेवच।
गोरक्षं, पश्चिमोत्तानं, उत्कटं, सङ्कटं तथा ॥४॥
मयूरं, कुक्कुटं, कूर्मं, तथा चोत्तान कूर्मकम्।
उत्तान मण्डुकं, वृक्षं, मण्डूकं, गरुडं वृषम् ॥६॥

शलभं, मकरं, उष्ट्रं, भुजङ्गश्च, योगासनम् ।
द्वात्रिंशदासनानितु, मर्त्यलोकेच सिद्धिदम् ॥६॥

सिद्धासन १ पद्मासन २ भद्रासन ३ मुक्तासन ४ वज्रासन ५ स्वस्तिकासन ६ सिंहासन ७ गोमुखासन ८ वीरासन ९ धनुरासन १० मृतासन ११ गुप्तासन १२ मत्स्यासन १३ मत्स्येन्द्रासन १४ गोरक्षासन १५ पश्चिमोत्तानासन १६ उत्कटासन १७ संकटासन १८ मयूरासन १९ कुक्कुटासन २० कूर्मासन २१ उत्तान कूर्मकासन २२ उत्तान मण्डूकासन २३ वृक्षासन २४ मण्डूकासन २५ गरुड़ासन २६ वृषभासन २७ शलभासन २८ मकरासन २९ उष्ट्रासन ३० भुजङ्गासन ३१ योगासन ३२ ये बत्तीस आसन मनुष्य लोकके लिये सिद्धि देने वालेहैं अर्थात् रोगादि निवारक तथा बल पुष्टि आदि बहुविध गुणकारक हैं ॥

तात्पर्य—योगियो के मत से रोग दो प्रकार के होते हैं एक तो कायिक जो देह में उत्पन्न होके इन्द्रियो के द्वारा मन को क्लेश पहुंचाते हैं दूसरे मानसिक जो केवल मनही में उत्पन्न हो के उसी मन को परम क्लेश पहुंचाते हैं । योगियो ने बड़े परिश्रम से यह आसन प्राणायाम आदि की "एक क्रिया व्यर्थ करी" निकाला है । आसनो के सम्बन्ध में एक बात और भी कहना है कि जो लोग अवसर देखा करते हैं कि बहुत से बाजीगर वगैरा भी बहुत से आसन करते हैं और देह के टोर भांज की बड़ी २ क्रियायें दिखाया करते हैं । वह भी शारीरक फायदा पहुंचाती । इसी से अकसर निरोग रहते हैं । परन्तु वे उस विद्या का तत्व नहीं जानते इसलिये उनके मानसिक क्लेश न दूर हो कर बल्कि और भी बढ़ते हैं । यानी, मोह तृष्णादिक दोष बढ़ के साधक को भ्रष्ट मार्गी कर डालते हैं । यहां पर इसी लिये जताया जाता है उधर की दृष्टि उस प्रकार न जावे ॥

सिद्धासन ॥ १ ॥

योनिस्थानकमङ्घ्रिमूलघटिकं सम्पीड्यगुल्फेतरम् ।
मेढ्रे सम्प्रणिधायतन्तुचिबुकं कृत्वाहृदिस्थायिनम् ॥
स्थाणुःसंयमितेंद्रियोऽचलदृशा पश्यन्भ्रुवोरन्तरम् ।
मोक्षंचैवविधायतेफलकरं सिद्धासनंप्रोच्यते ॥ ७ ॥

जितेन्द्रिय साधक पैर की लह यानी एड़ी को योनिस्थान (जहां स्त्रियों की योनि होती है ऐसी कल्पना कर अर्थात् अण्डकोश के नीचे) में भिड़ावे और फिर दूसरा गुल्फ अर्थात् एड़ी लिङ्ग के ऊपर धरे, फिर चिबुक यानी ठाढ़ी को छातीमें लगावे फिर इन्द्रियों को बांधकर अर्थात् एक ध्यान में बांध कर अचल दृष्टि यानी एकटकी लगा कर भौंहों के बीच के स्थान को देखै। इसी प्रकार करने से सिद्धासन कहा जाता है और यह आसन मोक्ष फल तथा आरोग्य नीरोग आदि फल का देने वाला है ॥

तात्पर्य-मोक्ष यह कि शरीर नीरोग रहने से बुद्धि बढ़ती है बुद्धि बढ़ने से सत् असत् का ज्ञान होता है, भ्रम निवृत्त होकर जन्म मरणका जो दुःख है उससे छूट जाता है, अकाल मृत्यु से न मर कर काल मृत्यु से मर कर परमात्मा में लय हो जाता है ॥

पद्मासन ॥ २ ॥

वामोरूपरिदक्षिणंहिचरणं संस्थाप्यवामंतथा ।
दक्षोरूपरिपश्चिमेनविधिना कृत्वाकराभ्यांदृढम् ॥
अंगुष्ठेहृदयेनिधायचिबुकं नासाग्रमालोकयेत् ।
एतद्व्याधिविनाशकारणपरं पद्मासनंचोच्यते ॥८॥

दहिना पैर बाईं जांघ पर तथा बायां पैर दहिनी जांघ पर रक्खे और पीछे की ओर से दहिने हाथ से दहिने पैर के अंगूठे को तथा बायें हाथ से बायें पैर के अँगूठे को दृढ़ता से पकड़े । इसी प्रकार चिबुक (ठोढ़ी) छाती पर रक्खे और नासिका का अग्र भाग देखे । इसी का नाम पद्मासन है । यह आसन समस्त व्याधि विनाश करनेमें श्रेष्ठ है ॥

भद्रासन ॥ ३ ॥

गुल्फौचवृषणस्याधो व्युत्क्रमेणसमाहित. ।
पादांगुष्ठेकराभ्यांच धृत्वाचपृष्ठदेशतः ॥ ९ ॥
जालंधरंसमासाद्य नासाग्रमवलोकयेत् ।
भद्रासनंभवेदेतत् सर्वव्याधिविनाशकम् ॥१०॥

दोनों गुल्फ अर्थात् एड़ी अण्डकोश के नीचे उलट के रक्खे बाद पीठ की ओर से दोनों हाथों से दोनों पैरों के अँगूठों को पकड़े और जालंधर बंध (आगे में देखो) करके नासिका का अग्र भाग ध्यान करके देखे । इसी का नाम भद्रासन है और यह आसन सब प्रकार की व्याधियों को नष्ट करता है ॥

मुक्तासन ॥ ४ ॥

पायुमूलेवामगुल्फं दक्षगुल्फंतथोपरि ।
शिरोग्रीवासमंकायं मुक्तासनंतुसिद्धिदम् ॥११॥

बाईं एड़ी गुदा के जड़ में लगावे उसी के ऊपर दहिनी एड़ी रक्खे सिर और गला समान भाग से रक्खे हिलने डुलने न पावे और सीधा शरीर करके बैठे, इसी को मुक्तासन कहते हैं । यह आसन साधक को सब प्रकार की सिद्धि देने वाला है ॥

वज्रासन ५ ।

जंघाभ्यां वज्रवत् कृत्वा गुदपार्श्वे पदावुभौ ।
वज्रासनं भवेदेतत् योगिनां सिद्धि दायकम् ॥१२॥

दोनों जांघों को वज्र के आकार कर के गुदा के दोनो तरफ दोनों पैर मिलावे । इसी को वज्रासन कहते हैं । यह आसन योगियों को सिद्धि प्रदान करता है ॥

स्वस्तिकासन ६ ।

जानूर्वोरन्तरे कृत्वा योगी पाद तले उभे ।
ऋजुकायः समासीनः स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते ॥१३॥

दोनों जानु अर्थात् पिडुली दोनो जांघोंके बीच करके दोनो चरण तल भी इसी मध्य में रक्खे और ऐंठबैंठ छोड़ कर सरल भाव शरीर करके बैठे । यही स्वस्तिकासन कहाता है ॥

सिंहासन ७ ।

गुल्फौ च वृषणस्याधो व्युत्क्रमेणोर्द्धतांगतः ।
चितिमूलेभूमिसंस्थः कृत्वाच जानुनोपरि ॥१४॥
व्यक्तवक्त्रो जलंधं च, नासाग्र मवलोकयेत् ।
सिंहासनं भवेदेतत् सर्व व्याधि विनाशकम् ॥१५॥

दोनो एड़ी अंडकोश के नीचे उलट कर परस्पर मिलाय के रक्खे और ऊपर की ओर मोड़ दर कर ले-और दोनों पिडुली भूमि मे लगाय दे तथा पिडुलियो के ऊपर मुख को खोल कर ऊंचो करक । जालधर बध

(आगे देखो) के आश्रय से नासिका का अग्रभाग देखै । इसी को सिंहासन कहते हैं । इसी आसन के द्वारा सब प्रकार की व्याधि विनष्ट होती है ॥

गोमुखासन ८ ।

पादौच भूमौसंस्थाप्य, पृष्ठपार्श्वे निवेशयेत् ।
स्थिरकायं समासाद्य, गोमुखं गोमुखाकृतिः ॥१६॥

दोनो पैरो को भूमि में स्थापन करके पीठके बगलोमें लगावे और स्थिर शरीर होकर बैठे तो वह गोमुख के आकार देख पड़ेगा, इसी का नाम गोमुखासन है ॥

वीरासन ९ ।

एक पाद मथैकस्मिन् विन्यसेदुरुसंस्थितम् ।
इतरस्मिन्स्तथा पश्चाद्वीरासन मितीरितम् ॥१७॥

एक जंघा के ऊपर एक पैर रख के दूसरा पैर पीछे की ओर रक्खै इसी को वीरासन कहते हैं ॥

धनुरासन १० ।

पसार्य्यपादौ भुविदण्डरूपौ, करौचपृष्ठे धृतपादयुग्मम् ।
कृत्वाधनुस्तुल्यपरिवर्तिताङ्गम् जगादयोगीधनुरासनन्तत्१८

दोना चरण भूतल में समान भाव से दण्डा की तरह फैलाय दे दोनो कर पृष्ठ की ओर से ला कर दोनो पैरों को पकड़े और देह को धनुष के आकार बनावे और उलटे पुलटे इसीको योगी लोग धनुरासन कहते है ॥

मृतासन ११ ।

उत्तान शववद्भूमौ, शयानन्तु सवासनम् ।
शवासनं श्रमहरं, चित्तविश्रान्ति कारणम् ॥१९॥

मरे मनुष्य की तरह धरातल में शयन करनेही से मृतासन होताहै इसको शवासन कहते हैं यह आसन श्रम को विनष्ट करता है और चित्त विश्राम का कारण है ॥

गुप्तासन १२ ।

जानुनोरन्तरे पादौ कृत्वापादौ च गोपयेत् ।
पादोपरिच संस्थाप्य गुदं गुप्तासन विदुः ॥२०॥

दोनो गुठुनो के बीच में दोनो पावो को गुप्त भाव से रक्खे और दोनो पावो पर गुदा को स्थापन करै । इसी को गुप्तासन कहते हैं ॥

मत्स्यासन १३ ।

मुक्तपद्मासनं कृत्वा उत्तानशयनं चरेत् ।
कूर्पराभ्यांशिरोवेष्टय, मत्स्यासनन्तु रोगहा ॥२१॥

मुक्त पद्मासन लगाय के हाथ के दोनो गुठुनो से शिर को लुपेटै और चित्त होके पड़ जावे । इसी को मत्स्यासन कहते हैं । यही आसन समस्त रोगो का नाश करता है ॥

पश्चिमोत्तान आसन १४ ।

प्रसार्य्यपादौभुविदण्डरूपौ, संन्यस्तभालश्चितियुग्ममध्ये ।
यत्नेनपादौचधृतौकराभ्यां, योगीन्द्रपीठपश्चिमोत्तानमाहुः२२

दोनो पाव भूमि में दण्डा की तरह फैलाय दे और यत्न के सहित दोनो पाव हाथों से पकड़े और दोनो जाघो के बीच अपने शिर को पैठारै, इसी को योगीन्द्र लोग पश्चिमोत्तान आसन कहते हैं॥

मत्स्येन्द्रासन १५।

उदरं पश्चिमाभासं कृत्वातिष्ठति यत्नतः।
नम्रांग वामपादं हि, दक्षजानु परिन्यसेत्॥२३॥
तत्र याम्यं कूर्परञ्च याम्यं करेच वक्त्रकम्।
भ्रुवोर्मध्ये गतांदृष्टि पीठंमात्स्येन्द्रमुच्यते॥२४॥

पेटको पीठकी तरह करै अर्थात् पेटकुजा पड़े और बायें पैरको नवाय के दहिने पैर की जघा पर रक्खे, इसी प्रकार उस बायें पैर पर दहिने पैर को एड़ी रक्खे। इधर दहिने हाथ पर मुह को रक्खे और भौहों के मध्यस्थल को देखे। इसको मत्स्येन्द्र आसन कहते हैं॥

गोरक्षासन १६।

जानूर्वोरन्तरेपादौ उत्तानाव्यक्त संस्थितौ।
गुल्फौचाच्छाद्य हस्ताभ्या मुत्तानाभ्यां प्रयत्नतः॥२५॥
कण्ठसङ्कोचनंकृत्वा नासाग्र मवलोकयेत्।
गोरक्षासनमित्याह योगिनांसिद्धिकारणम्॥२६॥

दोनो जाघ और पिडुलियो के मध्य में दोनो पैर उत्तान करके गुप्त भाव से रक्खे फिर दोनो हाथो से दोनो एड़ी मूंद ले। इसके बाद कंठ को सकुचित करके नासिका का अग्र भाग अवलोकन करै। इसीको गोरक्षासन कहते हैं। यह योगियो को सिद्धि देने वाला है॥

उत्कटासन ॥१७॥

अंगुष्ठाभ्यामवष्टभ्य धरांगुल्फेचखेगतौ ।
तत्रोपरिगुदंन्यस्य विज्ञेयमुत्कटासनं ॥२७॥

पैर के दोनों अँगूठों के बल से भूमि में स्थित हो के दोनों एड़ियों को निरालम्ब हो के उठाय दे और उन्हीं एड़ियों पर गुदा को रक्खै । इसी को उत्कटासन जानना चाहिये ॥

सङ्कटासन ॥१८॥

वामपादंचितेर्मूलं सन्यस्यधरणीतले ।
पाददण्डेनयाम्येन वेष्टयेद्वामपादकम् ॥२८॥
जानुयुग्मेकरौयुग्म मेतत्तुसङ्कटासनं ।

बायां पैर और बायां गुठुना भूमि में लगावे और दहिने पैरसे बायां पैर लपेट ले और फिर दोनों जाघों पर दोनों हाथ रक्खे । इसी को सकटासन कहते हैं ॥

मयूरासन ॥१९॥

धरामवष्टभ्यकरयोस्तलाभ्यां, तत्कूर्परेस्थापितनाभिपार्श्वम् । उच्चासनेोदण्डवदुत्थितःखे मयूरमेतत्प्रवदन्तिपीठम् ॥२९॥

हाथ के दोनों तलों से भूमि को धारण करे फिर हाथ की दोनों गाटियों को नाभी के दोनों बगलों में स्थापन करना और दोनों पैरों को फैलाय के ऊंचे आसन से दंडे की तरह आकाश में देह को उठावे । यही मयूर आसन है ॥

कुक्कुटासन ॥२०॥

पद्मासनंसमासाद्य जान्वोरन्तरेकरौ ।
कूर्पराभ्यांसमासीनो मञ्चस्थःकुक्कुटासनम् ॥३०॥

पद्मासन में बैठकर दोनों जंघा और दोनों पिंडुलों के बीचमें हाथ को पैठारे और दोनों हाथों की गादियों पर मंच की तरह उठ के बैठे इसी को कुक्कुटासन कहते हैं ॥

कूर्मासन ॥२१॥

गुल्फौचवृषणस्याधो व्युत्क्रमेणसमाहितौ ।
ऋजुकायशिरोग्रीवं कूर्मासनमितीरितं ॥३१॥

दोनों एड़ियोंको अण्डकोष के नीचे उलटके रक्खे । शिर और ग्रीवा समेत देह को सीधे तौर पर रक्खे इसी को कूर्मासन कहते हैं ॥

उत्तान कूर्मासन ॥२२॥

कुक्कुटासनबन्धस्थं कराभ्यांधृतकन्धरम् ।
पीठंकूर्मवदुत्तान मेतदुत्तानकूर्मकम् ॥३२॥

पहिले कुक्कुटासन बांध ले फिर दोनों हाथों से कांधा पकड़ के कछुवे की तरह उत्तान हो जाय, इसी को उत्तान कूर्मासन कहते हैं ॥

उत्तान मण्डूकासन ॥२३॥

मण्डूकासनमध्यस्थ कूर्पराभ्यांधृतंशिरः ।
एतद्भेकवदुत्तान मेतदुत्तानमण्डूकम् ॥३३॥

मंडूकासन में बैठकर हाथों के टिहुनों से शिर धारण करके उत्तान हो जावे। इसी का नाम है उत्तान मंडूक॥

वृक्षासन ॥२४॥

वामोरूमूलदेशेच याम्येपादौनिधायतु।
तिष्ठेत्तुवृक्षवद्भूमौ वृक्षासनमिदंविदुः ॥३४॥

दहिना पांव बायें जांघके मूल अर्थात् जड़में रक्खे और समानभाव से वृक्ष की तरह खड़ा हो इसी को वृक्षासन जानना॥

मण्डूकासन ॥२५॥

पादतलौपृष्ठदेशे ऽङ्गुष्ठेद्वेचसंस्पृशेत्।
जानुयुग्मंपुरस्कृत्य साधयेन्मंडुकासनम् ॥३५॥

दोनो पैर पीठ की ओर करके उनके दोनों अँगूठे परस्पर एक २ से मिलावे, तथा दोनों जांघ सामने की ओर रक्खे, इसी प्रकार मंडूकासन साधन करे॥

गरुड़ासन ॥२६॥

जङ्घोरुभ्यांधरांपीड्य स्थिरकायोद्विजानुना।
जानूपरिकरयुग्मं गरुड़ासनमुच्यते ॥३६॥

दोनो जांघो से तथा दोनो पिंडुलियों से भूमि को दबावे और दोनो पिंडुलियों पर दोनो हाथ रक्खे। इसीको गरुड़ासन कहते हैं॥

वृषासन ॥२७॥

याम्यगुल्फेपायुमूलं वामभागेपदेतरं ।
विपरीतंस्पृशेद्भूमिं वृषासनमिदम्भवेत् ॥३७॥

गुह्य द्वार पैर दक्षिण एड़ी के ऊपर रख के उसी के वाम भाग में बायें पांव को उलटा करके रक्खे भूमि के स्पर्श करै इसी को वृषासन कहते हैं ॥

शलभासन ॥२८॥

अधास्य:शेतेकरयुग्मं वक्षेभूमिमवष्टभ्य करयोस्तलाभ्यां। पादौचशून्येच वितस्तिचोर्द्ध्वम् वदंतिपीठंशलभंमुनींद्राः ॥३८॥

नीचे मुह करके शयन करै । वक्षस्थल में दोनों कर स्थापन कर के दोनों करतलों से मृत्तिका पकड़ कर दोनों पैर शून्य भाग में बिलस्तभर ऊंचे रक्खे इसी का नाम शलभासन है ॥

मकरासन ॥२९॥

अधास्य:शेते हृदयंनिधाय भूमौचपादौ चप्रसार्यमाणौ । शिरश्चघृत्वाकरदण्डयुग्मे देहाग्निकारंमकरासनन्तत् ॥३९॥

भूमि में पेटकुआ पौढ जावे और नीचे मुह करके छातीको भूमि में लगाय ले, और दोनों पैर फैलाय दे । फिर दोनों हाथों से शिर धारण करै । इसीको मकरासन कहते हैं ॥

उष्ट्रासन ३०।

अधास्यःशेतेपदयुग्मव्यस्तं, पृष्ठेनिधायापिधृतंकराभ्याम्।
आकुञ्चयेत्सम्यगुदरास्यगाढं, उष्ट्रञ्चपीठंयोगिनोवदन्ति ४०

अधो वदन शयन करके दोनों पैर उलट को पीठ की ओर लावे। पीछे दोनों हाथों से इन्हीं पैरों को धर के मुह और पेट दृढ़ भाव से सिकोड़ ले, इसी को उष्ट्रासन कहते हैं॥

भुजंगासन।

अंगुष्ठनाभि पर्य्यन्त मधो भूमौ विनिन्यसेत्।
करतलाभ्यां धरांधृत्वा, उर्ध्वशीर्ष फणीवहि॥४१॥
देहाग्नि र्वर्द्धते नित्यं, सर्व रोग विनाशनम्।
जागर्ति भुजगी देवी साधनात् भुजगासनम्॥४२॥

पैर के अंगूठे से लेकर नाभी पर्य्यन्त देह को नीची ओरवाला भाग धरातल में अच्छी तरह स्थापन करके हाथ के दोनों तलों (पञ्जों) से भूमि को अवलम्बन करे और सर्प के फन की भांति शिर भागको उठावे, इसी को भुजंगासन कहते हैं॥

फल॥

इसके साधन से शरीर को अग्नि दिन २ बढ़ती जाती है। तात्पर्य यह कि भूख अच्छी तरह से लगती है, अन्न जो कुछ खाया जाता है अच्छी तरह से परिपक्क हो कर शरीरको पुष्टि पहुँचाता है। इसी कारण रोग राशि अर्थात् जितने रोग इस आसन साधन के पूर्व रहे हों सबको

नष्ट करता है । इसी आसन के अभ्यास करने से भुजगी देवी अर्थात् कुण्डलिनी शक्ति जाग उठती है । जिसका वृत्तान्त आगे लिखेंगे॥

योगासन ।

उत्तानौचरणौ कृत्वा संस्थाप्य जानुनोपरि ।
आसनोपरि संस्थाप्य उत्तानं कर युग्मकम् ॥४३॥
पूरकैवायुमाकृष्य नासाग्र मवलोकयेत् ।
योगासनं भवेदेतत् योगिनां योग साधने ॥४४॥

दोनो पैरों का चित्त कर दोनो जाघों के ऊपर सस्थापित कर के दोनो कर उत्तान भाव से आसन के ऊपर राखे, बाद पूरक प्राणायामके द्वारा वायु खींच कुम्भक करै अर्थात् जहां तक हो सकै थामे रहै और उसी समय में नासिका का अग्र भाग अवलोकन करै । इसी को योगासन कहते हैं । योग साधन विषय में यह आसन योगियां को अवश्य साधन करना चाहिये ॥

इति घेरण्डसंहितायां द्वितीयोपदेश ॥ २ ॥

तृतीयोपदेश:

अथ मुद्रा कथनम् (अब मुद्रा कहते है)

महामुद्रा, नभोमुद्रा, उड्डीयानं, जलंधरम् ।
मूलबन्ध महाबन्ध, महावेधश्च, खेचरी ॥१॥

विपरीतकरी, योनि, वज्रोणी, शक्तिचालिणी।
ताडागी, मांडवीमुद्रा, शाम्भवी पञ्चधारणी ॥२॥
अश्विनी, पाशिनी, काकी, मातङ्गीच, भुजङ्गिनी।
पञ्चविंशति मुद्राणि, सिद्धदानीह योगिनाम् ॥३॥

घेरण्ड महाराज ने फिर कहा कि, पहिले जो भुजङ्गासन के फल में कुण्डलिनी शक्ति के जागने की बात कह आये हैं उस कुण्डलिनी शक्ति के जागने में मुद्रा भी चाहिये बिना मुद्रा कुण्डलिनी शक्ति * सोई रहती है इसलिये पचीस प्रकार की मुद्रा हैं, उनके नाम ये हैं:—

* रुद्रयामल में लिखा है कि गुरु के प्रसाद से यह सोई हुई कुण्डलिनी शक्ति जागती है अन्यथा नहीं, यह कुण्डलिनी शक्ति क्या है उसपर कहतेहैं कि देहके अन्तर्गत जो ६ चक्रहैं उनमें कमलकी पखुरियोंके समान मांस पेशियां आपस में जकड़ी कमल के फूल की तरह सिकुड़ी रहतीहैं तथा जहां २ हड्डियों के जोड़ हैं वे भी "अस्थिबन्धन" नामक कठोर २ नसों से जकड़े रहते हैं, इस्से जब शरीर में मांस या रक्त मज्जा की अधिकता होती है तो वह शरीर मन के योग की वश में नहीं रहता, जिधर चाहिये उधर फेरिये, जिधर चाहिये उधर झुकाइये, जिधर चाहिये उधर मरोड़िये, अथवा शीघ्रगति से अङ्गोंको उठाइये बैठाइये, यह नहीं हो सक्ता। परन्तु जब देहकी कुण्डलिनीशक्ति जाग उठतीहै तो ये सब मन के अधीन हो जाते हैं, जिधर चाहिये फेरिये मरोड़िये उठाइये बैठाइये, लम्प, झम्प, झोर, झिटिक बड़ी फुर्ती से हो सक्ते हैं, यह कुण्डलिनी शक्ति यही है कि रग, नश, पेशी आदि की जकड़ बन्दी, उसका जागना यह है कि उन रग, नश, पेशियों की जकड़बन्दी खुल जावे, यह खुलजाही उसका जागना है ॥

१ महामुद्रा, २ नभोमुद्रा ३ उड्डीयान, ४ जलन्धर, ५ मूलबन्ध, ६ महाबन्ध, ७ महावेध, ८ खेचरी, ९ विपरीतकरी, १० योनि, ११ वज्रोणी, १२ शक्तिचालिनी, १३ ताड़ागी, १४ मांडवी, १५ शाम्भवी, धारणा मुद्रा पांच प्रकार की है जैसे १ पार्थिवीधारणा (१६) २ आम्भसी धारणा (१७) ३ वैश्वानरी धारणा (१८) ४ वायवी धारणा (१९) ५ नभोधारणा (२०) इसके बाद २१ अश्विनी, २२ पाशिनी, २३ काकी, २४ मातङ्गी २५ भुजङ्गिनी ॥

मुद्रानां पटलं देवि, कथितं तव सन्निधौ ।
येनविज्ञात मात्रेण, सर्वसिद्धिः प्रजायते ॥४॥
गोपनीयं प्रयत्नेन; न देयं यस्य कस्यचित् ।
प्रीतिदं योगिनां चैव, दुर्लभं मरुतामपि ॥८॥

श्री महादेव जी पार्वती जी से कहते हैं कि हे देवि ! तुम्हारे निकट सब मुद्राओं का नाम हमने कहा । इनके जान लेने ही से सब

लिखा है कि यह कुण्डलिनी शक्ति ब्रह्म रंध्र की ओर मुख किये सोती है, तात्पर्य यह है कि हृदय कमल जिसको कलेजा कहतहैं उससे सब नाड़ियां निकल कर समस्त शरीर में व्याप्त हैं और उनकी दौड़ मस्तिष्क की ओर है, जहां कहीं धक्का लगता है तो वह झनझनाहट बिजुली की शक्ति से भी शीघ्र मस्तिष्क में पहुंच कर सुख दुख बोध करती हैं। परन्तु जब तक सब रग, नश, नाड़ी, पेशी आदि शरीर के टुकड़े अलग२ शक्ति कारक नहीं होते तब तक मानसिक वृत्ति की स्थिति स्थापकता नहीं आती और इसीसे पढ़ लिख कर ज्ञान होने पर भी चित्त वृत्ति का निरोध जो योग का प्रथम लक्षण है नहीं प्राप्त होता । इसी लिये हठ योग द्वारा उस कुण्डलिनी शक्ति को जगाना उचित है, इससे आसन मुद्रा आदि प्रयोग करना आवश्यक है ॥

प्रकार की सिद्धियां लाभ होती हैं। ये सब विषय परम गोपनीय है। जिस किसी को कभी नहीं देना चाहिये (क्योंकि बिना प्रतिज्ञा ये साधित हो नहीं सके, अवश्य जन दोषित करेंगे, न बन पड़ेगा तो इस विद्या को झूठी कह कर दृढ़ प्रतिज्ञों का भी मन भड़काय देंगे, थोड़े दिन बाद यह विद्या लोप हो जायगी) ये सब मुद्रा योगियों को ही परम प्रीति देनेवाली हैं। यह मुद्रा देवताओं को भी दुर्लभ हैं। तात्पर्य यह कि जो कोई साधन करेगा उसी की सम्पत्ति है, ढिलड़ों को कभी अवसर नहीं है॥

महा मुद्रा।

पायुमूलंवामगुल्फे संपीड्यदृढयत्नतः।
याम्यपादंप्रसार्य्याथ करेधृतपदांगुलः॥६॥
कंठसंकोचनंकृत्वा भ्रुवोर्मध्यनिरीक्षयेत्।
महामुद्राभिधामुद्रा कथ्यतेचैवसूरिभिः॥७॥

गुदा मूल को बाईं एड़ीसे खूब मज़बूती के साथ दबावै और दहिने पैर को फैलाय दे। और हाथ से पैर की अंगुली धरै, फिर कंठ को संकुचित करके भौहों के मध्य भाग को देखै। इसी को पण्डित गण महामुद्रा नाम से पुकारते हैं॥

इसका फल।

क्षयकासंगुदावर्तं प्लीहाजीर्णज्वरन्तथा।
नाशयेत्सर्वरोगांश्च महामुद्रातिसेवनात्॥८॥

उपरोक्त महामुद्रा को अधिक२सेवन करने से अर्थात् अभ्यास करने से, क्षय कास, (क्षयी की खांसी) गुदावर्त (गुदा के चारो ओर वाले व्रण)

प्लीहा (पिलई) जीर्ण ज्वर (पुराना ज्वर) तथा और २ सब प्रकार रोगों को यह महामुद्रा नाश करती है ॥

नभोमुद्रा ।

यत्रयत्रस्थितेयोगी सर्वकार्येषुसर्वदा ।
ऊर्द्ध्वजिह्वःस्थिरोभूत्वा धारयेत्पवनंसदा ।
नभोमुद्राभवेदेषा योगिनांयोगनाशिनी ॥९॥

जब जब योगी किसी कार्य्य में लगे तब २ सर्वदा ही ऊपर की ओर जिह्वा करके कुम्भक द्वारा स्थिर हो पवन को धारण किया करे, यह अभ्यास सदा रखने से योगियों के समस्त रोग नष्ट हुआ करते हैं, इसी को नभो मुद्रा कहते हैं ॥

तात्पर्य्य यह कि हर काम में हर प्रकार की गुण ऐगुणकारी हवा आपही गुण औगुणकारी रही आती है। यदि इस नभोमुद्रा का अभ्यास रहेगा तो झट कुम्भक के द्वारा, बाहर की हवा का आना बन्द करदेगा और मलीन दुर्गन्धित तथा विकारी हवा पेट के भीतर न आ सकैगी। रोगों की उत्पत्ति अकसर हवा के साथ जहरीले रेशों के पेट में आने से हुआ करती है सो देशकाल देख रक्खे तो बहुतही अभाव हुआ करैगा ॥

उड्डीयानबन्ध ।

उदरेपश्चिमंतानं नाभेरूर्द्ध्वन्तुकारयेत् ।
उड्डीयानकुरुतेयत् तदविश्रांतंमपाखग. ॥
उड्डीयानन्त्यसौबन्धो मृत्युमातङ्गकेशरी ॥१०॥

नाही का ऊपरी भाग और पश्चिम द्वार को उदर के सम भाव में सिकोड़ना चाहिये। अर्थात् उदर को मध्यम भागस्थ गुह्यादि चक्र स्थित

नाड़ी समूह को नाभी के ऊपर सिकोड़ के उठाना चाहिये, इसी को उड्डीयानबन्ध कहते हैं, यह उड्डीयानबन्ध मृत्यु के लिये मातंग और केशरी भाव से हैं. अर्थात् मृत्यु रूपी हाथी को यह सिंह की तरह मारडालता है, तात्पर्य्य यह कि मृत्यु इसके साधन से जल्द नहीं हो सकी ॥

उड्डीयान बंध का विशेष फल।

समग्रात्बन्धनात्ह्येतत् उड्डीयानंविशिष्यते।
उड्डीयानेसमभ्यस्तेमुक्ति स्वाभाविकीभवेत् ॥११॥

जितने मुद्रा बन्ध कहे गये हैं सब में यह उड्डीयान बन्ध विशेष अर्थात् उत्तम है। [illegible] उड्डीयान बन्ध के अभ्यास से, आपही आप मुक्ति प्राप्त होती है, अर्थात् और बहुत मानसिक व्यापारों की आवश्यकता नहीं रहती। तात्पर्य्य यह कि इसके साधन से सदसत् का ज्ञान स्वभाव ही से बढ़ता है ॥

शिव संहिता में इस मुद्रा का फल यह लिखा है कि जो योगी इस को प्रतिदिन चार बार करता है उसके नाभी का पवन शुद्ध हो जाता है। इसी प्रकार छः महीना अभ्यास करने से मृत्यु को जीत लेता है। अर्थात् उसके उदर की अग्नि प्रज्वलित होती है और जो कुछ खाता है वह सब भस्म हो के रस यानी (अन्नसार की वृद्धि करता है और रोगों को नष्ट कर डालता है, फिर दत्तात्रयी जी की संहिता में भी लिखा है कि जो लोग अत्यन्त बुड्ढे होगये हों और इस उड्डीयानबंध का अभ्यास करें तो युवा हो सक्ते हैं और छः महीना प्रतिदिन करने से मृत्यु को जीत सक्ते हैं ॥

इन सब योग ग्रन्थ से साफ मालुम होता है कि वैद्यक शास्त्र से और योग शास्त्र से बहुतही सम्बन्ध है, इसी निमित्त हमारे भारतवर्ष

का वैद्यक स्वास्थ सब देश के वैद्यक से उत्तम था, परन्तु अब इस समय आलसी लोगों ने सब नष्ट करडाला, सिर्फ विदेशी चिकित्सा के आधीन हो गये।

जालंधर वंध।

कण्ठसंकोचनंकृत्वा चिबुकंहृदयेन्यसेत्।
जालन्धरेकृतेबंधे षोड़शाधारबन्धनम् ॥१२॥
जालन्धरंमहामुद्रा मृत्योश्चक्षयकारिणी।

कण्ठ सङ्कोचन करके हृदय (छाती) पर चिबुक (ढाढी) रखनेही से जालन्धर बन्ध कहा जाता है, इसके साधन करने से सोलह प्रकार के आधार बन्ध हुआ करते हैं, और यह मृत्यु को भी नष्ट करडालता है॥

जालंधर बन्ध का फल।

सिद्धंजालन्धरंबंधं योगिनांसिद्धिदायकं।
षण्मासमभ्यसेत् योहिससिद्धोनात्रसंशयः ॥१३॥

यह जालंधर बंध स्वयं सिद्ध है। यह योगियो को सिद्धि देनेवाला है। जो बुद्धिमान छः महीना इसका अभ्यास करता है वह अवश्य सिद्ध हो जाता है, इसमें संशय नहीं है॥

शिव संहिता में लिखा है कि इस जालंधर बंध को साधन कर के साधक इसीकेद्वारा शरीरस्थ सहस्रदल कमल से अमृत को नीचे की ओर ललाट के पास कर सक्ता है और अमर पद अर्थात् मृत्यु कभी न हो ऐसा पद पा सक्ता है। तात्पर्य यह है कि हृदय में एक स्थान ऐसा है जिसे कलेजा कहते हैं, यह यथार्थ में कमल की तरह है और उस की

नसे पेशियां भी कमल दल की तरह हैं। वे पेशियां हजारसे भी अधिक होंगी। आमाशय से जब भोजन की वस्तु का रस रक्त बन के जाताहै तो पहिले वहीं जमा होकर नाड़ियों के द्वारा शरीर में व्याप्त होता है, इस मुद्रा से नाड़ियां तन कर पेट छोड़ सार भाग को व्याप्त कर रोग नष्ट करती है॥

मूलबन्ध।

पार्ष्णिनावामपादस्य योनिमाकुञ्चयेत्ततः।
नाभिग्रन्थिंमेरुदण्डं सम्पीड्य यत्नतःसुधीः॥१४॥
मेढ्रं दक्षिण गुल्फेतु दृढवन्धं समाचरेत्।
जराविनाशिनी मुद्रा, मूलबन्धो निगद्यते॥१५॥

बायें पैर की एड़ी से गुदा प्रदेश को सिकोड़े उसके बाद नाभी की ग्रन्थि को मेरु दण्ड (कमर के पीछे की हड्डी) से दबावे और उपस्थ को दहिने एड़ी से मजबूत दबा के राखैं, इसी को मूलबन्ध कहते हैं। यह मुद्रा बुढ़ाई को नष्ट कर डालती है॥

मूलबन्ध का फल।

संसार सागरं तर्त्तुं मभिलषति यः पुमान्।
विरलेसुगुप्तोभूत्वा, मुद्रामेनां समभ्यसेत्॥१६॥
अभ्यासाद्बंधनस्यास्य मरुत्सिद्धिर्भवेद्ध्रुवम्।
साधयेद्यत्नतस्तर्हि मौनी तु विजितालसः॥१७॥

जो मनुष्य संसार सागर पार होने की इच्छा करें वे विरल स्थान (निर्जन) में गुप्त भाव से इस मुद्रा का अभ्यास करें। इस मूलबन्ध के

अभ्यास से निश्चय मरु सिद्धि (वायु को काबू) कर सक्ते हैं । इस से साधक आलस्य को परित्याग करके मौन हो यत्न पूर्वक इसको साधन करेंगे ॥

तात्पर्य यह है कि जब वायु काबू हो जायगा तब वह साधक जब पूरी तौर से वायु को शरीर में भर के कुम्भक प्राणायाम से अपने पौरुष को भी सचालन करैगा तो जहा इच्छा हो वहां उड़ सक्ता है । इसी साधना से बहुतेरे हाथ दो हाथ ऊंची जमीन से निराधार उठ आया करते हैं ॥

महाबन्ध ।

वाम पादस्य गुल्फेतु पायुमानं निरोधयेत् ।
दक्षपादेन तद्गुल्फं सम्पोड्य यत्नतः सुधीः ॥१८॥
शनैःशनैश्चालयेत्पार्ष्णिं योनिमाकुञ्चयेच्छनैः ।
जालंधरे धारयेत्प्राणं, महाबन्धोनिगद्यते ॥१९॥

बायें गुल्फ (एडी) से गुदा द्वार को रोक लेना और दहिने पैर से बायें को दाबते हुये धीरे २ गुह्य देश को चलावे और धीरे २ उसी गुह्य देश को सिकोड़े । और जालंधर बन्ध जो कह आये हैं उसके द्वारा प्राण वायु को धारण करे । इसी को महाबन्ध कहते हैं ॥

महाबन्ध का फल ।

महाबन्धः परोबन्धो जरामरण नाशनः ।
प्रसादादस्य बन्धस्य साधयेत्सर्व वांछितम् ॥२०॥

यह महाबन्ध नामकी मुद्रा सब मुद्राओंसे श्रेष्ठ है और जरा (बुढ़ाई)

तथा मरण नाश करने वाली है। इस महाबन्ध के प्रसाद से सब प्रकार के वाञ्छित सधे जाते है॥

महावेध कथन।

रूपयौवनलावण्यं नारीणांपुरुषंविना।
मूलबंधमहाबंधौ महावेधंविनातथा॥२१॥
महाबन्धं समासाद्य उड्डीनकुम्भकंचरेत्।
महावेधःसमाख्यातो योगिनांसिद्धिदायकः॥२२॥

जैसे पुरुष के विना नारियों का सुन्दर रूप, जवानी तथा लावण्य (लोनाई) निष्फल रहती है। वैसाही महावेध मुद्रा के विना मूल बन्ध तथा महाबन्ध भी किसी काम के नहीं रहते। पहिले महाबंध मुद्रा करै फिर उड्डीयान बन्ध (जो कह आये हैं) मुद्रा करके कुम्भक प्राणायाम से वायु को निरोध करनेही से महावेध मुद्रा कही जाती है। इसी महावेध के द्वारा योगी लोग सिद्धि लाभ किया करते हैं॥

महावेध का फल।

महाबन्धमूलबन्धौ महावेधसमन्वितौ।
प्रत्यहंकुरुतेयस्तु सयोगीयोगवित्तमः॥२३॥
नमृत्युतोभयंतस्य नजरातस्यविद्यते।
गोपनीयःप्रयत्नेन वेधोयंयोगिपुंगवैः॥२४॥

जो साधक प्रतिदिन इस महावेध के सहित महाबन्ध और मूलबंध का साधन किया करते हैं वेही योगियों में उत्तम योग विद्या के जानने

वाले कहे जासक्ते हैं। मृत्यु और बुढ़ाई उनको कभी नहीं दबाय सक्ती यह मुद्रा परम गोपनीय है योगियों में श्रेष्ट जन इसको हर किसी से नहीं कहते ॥

खेचरी मुद्रा।

जिह्वाधोनाडींसंछिन्नां रसनांचालयेत्सदा।
दोहयेन्नवनीतेन-लौहयंत्रेणकर्षयेत् ॥२५॥
एवंनित्यंसमभ्यासाल्लम्बिका दीर्घतांव्रजेत्।
यावद्गच्छेद्भ्रुवोर्मध्ये तथागच्छतिखेचरी ॥२६॥
रसनांतालुमध्येतु शनैःशनैःप्रवेशयेत्।
कपालकुहरेजिह्वा प्रविष्टाविपरीतगा ॥
भ्रुवोर्मध्येगतादृष्टि मुंद्राभवतिखेचरी ॥२७॥

जिह्वा के नीचे जिह्वामूल और जिह्वा इन दोनों को जो नाड़ी जोड़े रहती है उसको काट देवे और नित्यही जिह्वा के अग्र भाग जिह्वा के नीचे सदा चलाया करे। और जीभ को नवनीत (मैनू) से दुहा करे और लोहे की जिह्वा लेखनी (चिमटा) द्वारा खींचा करे। इसी प्रकार प्रतिदिन करने से जीभ लंबी हो जाती है। क्रम से अभ्यास करते २ जीभ को इस प्रकार लंबी करे जिस्से कि यह दोनों भौहों के बीच तक पहुंच जावे। फिर उसी जीभ को क्रम से तालुये के बीच ले जाना चाहिये। तालु प्रदेश मध्यस्थ गह्वर (गड्ढा) को कपाल कुहर कहते हैं। जीभ को उसी कपाल कुहर में ऊपर की ओर उलट के प्रवेशित कर के दोनों भौहों का मध्यस्थल अवलोकन करे, इसको खेचरी मुद्रा कहते हैं॥

खेचरी मुद्रा का फल।

नचमूर्च्छा क्षुधातृष्णा नैवालस्यं प्रजायते।
न च रोगो जरा मृत्यु र्देवदेहः स जायते ॥२८॥

जो मनुष्य इस खेचरी मुद्रा का साधन किया करतेहैं उनको मूर्छा, क्षुधा, तृष्णा, कभी नहीं क्लेश दे सके, और न कभी आलस्य आवै, न रोग निकट आवै, और उनके समीप बुढ़ाई, वा मृत्यु कभी नहीं आ सकी, और वे देव देह हो जाते हैं। और भीः–

नाग्निना दह्यते गात्रं, न शोषयति मारुतः।
न देहं क्लेदयन्त्यापो दंशयेन्न भुजंगमः ॥२९॥

जो खेचरी मुद्रा का अभ्यास करते हैं, उनको अग्नि नहीं जलाय सक्ती, वायु उसको नहीं सुखाय सके। जल उसके शरीर को घुलाय नहीं सके। तथा उसको सर्प भी नहीं काट सके॥

विपरीतकरी मुद्रा।

नाभिमूले वसेत्सूर्य्य स्तालुमूले च चन्द्रमाः।
अमृतं ग्रसतेसूर्य्य स्ततोमृत्यु वशीनरः ॥३०॥
ऊर्ध्वंच गमयेत्सूर्य्यं चन्द्रञ्च अध आनयेत्।
विपरीतकरी मुद्रा सर्व्वतन्त्रेषु गोपिता ॥३१॥
भूमौ शिरश्च संस्थाप्य करयुग्मं समाहितः।
ऊर्ध्वपादः शिरोभूत्वा विपरीतकरीमता ॥३२॥

नाभि की जड़ में सूर्य्य (सूर्य्य नाड़ी) वास करते हैं और मुखके तलुये की जड़ में चन्द्रमा (चन्द्र नाड़ी) है जब नीचे से सूर्य्य अपने तेज के आकर्षण से देह स्थित अमृत को ग्रास कर लेते हैं, तब मनुष्य मृत्यु के वश हो जाता है ॥

इस लिये ऊपर की ओर सूर्य्य को उठाना चाहिये और नीचे की ओर चन्द्रमा को ले आना चाहिये । इसी का नाम विपरीतकरी मुद्रा है जो सब तन्त्रों में गुप्त रक्खी गई है ॥

इसकी क्रिया इस प्रकार है—भूमि में शिर को स्थापन करे और दोनों हाथों से भूमि थाम कर पैरों को ऊपर की ओर उठाय के सीधा खड़ा करे और पूरक प्राणायाम से वायु खींच कर कुम्भक के द्वारा जहां तक ठहरा जावे ठहरे । इसी को विपरीतकरी मुद्रा कहते हैं ॥

तात्पर्य्य—नाभि में एक नाड़ी ऐसी है जिसको जठराग्नि उत्तेजक कहते हैं अर्थात् हृदय के पास जो पित्तस्राव नाड़ी है उससे बड़ा गरम २ पित्त थोड़ा २ बहकर उसी नाड़ी के द्वारा जा कर आमाशय के अन्न को पकाता है और वहां से अन्न रस निकल कर अन्न रस ग्राहक नाड़ी के द्वारा समस्त शरीर में पहुंचता है, परन्तु जब पित्त रस अधिक प्रवाहित हो कर उस नाड़ी में जाता है तब पित्त कोपित हुआ कहा जाता है अर्थात् पित्त की इतनी अधिकाई हो जाती है कि शरीर के समस्त रस को भस्म कर डालता है और अन्न रस की शक्ति को दूषित करके अनेक प्रकार की पैत्तिक व्याधियां उत्पन्न करता है, फिर उन व्याधियों से मनुष्य बहुत जल्द मर जाता है, इस क्रिया के निवारण के वास्ते यह विपरीतकरीमुद्रा कही है, यानी शिर नीचे करके ऊपरको ओर पैर उठाय के प्रति दिन घंटे दो घंटे जहां तक ठहर सके किया करे तो वह पित्त रस जो अधिकाई से नाभि की जड़ वाली नाड़ी में जाके विकार उत्पन्न किया करता है वह नहीं होवे, अर्थात् वह पित्त रस तरलीय पदार्थ है,

जल की गति नीचे की ओर है सो नीचे तालु नाड़ीकी ओर आकर कफ की नाड़ी जिसे चन्द्र नाड़ी कहते हैं आकर मिलेगा तो क्लेद (खिखार) बनके दन्तधावन आदि क्रियाओं से निकल जाया करैगा, बस शरीर नीरोग रह कर दीर्घायु प्राप्त करैगा ॥

अक्सर जब पित्त कोप करता है तब नाभि के पास टटोलने से आग की तरह जलता है, मूत्र गरम और लाल होता है, तमाम बदन नीरस हो कर पीड़ा करता है, पैत्तिक ज्वर होने से दाह, (जलन) तृषा (प्यास) आदि तेजमय उपद्रव शरीर भर में हो जाते हैं योगीलोग इन सब उपद्रवों से साफ बचे रहते हैं ॥

विपरीतकरी मुद्रा का फल ।

मुद्रेयं साधयेन्नित्यं जरां मृत्युं च नाशयेत् ।
ससिद्धः सर्वलोकेषु प्रलयेपि न सीदति ॥३३॥

जो मनुष्य इस मुद्राको प्रतिदिन साधन करताहै, वह जरा (बुढापे) और मरण से बचा रहता है, फिर वह सब लोकों में सिद्ध हो जाता है और प्रलय होने पर भी अभय रहता है, नहीं मरता ॥

अथ योनि मुद्रा ।

सिद्धासनं समासाद्य कर्णचक्षुर्नसोमुखम् ।
अंगुष्ठतर्जनीमध्यानामादिभिश्चसाधयेत् ॥३४॥
काकीभिः प्राणांसकृष्य अपाने योजयेत्ततः ।
षट्चक्राणिक्रमाद्धात्वा हुं, हंस., मनुनासुधीः॥३५॥
चैतन्य मानये द्देवी निद्रिताया भुजगिनी ।

जीवेन सहितां शक्तिं समुत्थाप्य करांबुजे ॥३६॥
शक्तिमयः स्वयं भूत्वा परंशिवेन संगमम् ।
नानासुखं विहारं च, चिन्तयेत्परमं सुखम् ॥३७॥
शिवशक्तिसमायोगा देकान्तं भुविभावयेत् ।
आनन्दंचस्वयंभूत्वा अहंब्रह्मेति सम्भवेत् ॥३८॥
योनिमुद्रा परागोप्या देवानामपि दुर्लभा ।
सकृत्तुलाभ संसिद्धिः समाधिस्थः स एवहि ॥३९॥

प्रथम सिद्धासन (जो पहिले कह आये है) से बैठे, फिर कान, आंख, नाक, मुंह ये चार द्वारों को अँगूठे, तर्जनी, मध्यमा, अनामिका इन अंगुलियों से ढांप ले । अर्थात् कान के दोनों छेदों को दोनों अँगूठों से, दोनों आंखों को दोनों तर्जनी से, दोनों नाक के छेदों को दोनों मध्यमा से, मुख को दोनों अनामिका से दाबे । फिर काकी मुद्रा से प्राण वायु को आकर्षण करे और फिर उसे अपान वायु (अधोवायु) में मिलाय दे, उसके बाद शरीरस्थ जो छः चक्र हैं उनका ध्यान करे अर्थात् यह कल्पना करे मानों हम उन्हें देख रहे हैं उसी समय में "हुं" और "हंसः" इन दो मंत्रों के द्वारा भुजंगिनी रूप कुण्डलिनी देवी को जगावे । तथा जीवात्मा सहित उस कुण्डलिनी को सहस्रार कमल में उठाय के ले जावे, और यह साधक इस प्रकार चिन्ता करे मानो "मैं शक्तिमय होकर शिव के साथ प्रसंग में आसक्त होते हुये परम आनन्द भोग और बिहार करता हूं तथा शिव शक्ति के संयोग से यहाँ आनन्द मय ब्रह्म हूं" इसी को योनि मुद्रा कहते हैं, यह मुद्रा परम गोपनीय है यह देवतों को भी दुर्लभ है इस मुद्रा को एक बार भी कोई साधन करे तो साधनेवाला पुरुष सिद्ध हो जाता है, इसके द्वारा बहुत ही जल्द समाधि प्राप्त हो सक्ती है ॥

तात्पर्य यह कि—मनुष्य जिस वस्तु का अभ्यास जी लगा कर करे वही वस्तु उसके मनोवृत्ति में दृढ बद्ध हो जाती है. यदि मनुष्य रात दिन दुःख की कथा, दुःख की वार्ता, दुःख की आलोचना दुःख की चिन्ता करता रहै तो वह दुःख उसके तन मन में विन्धा रहता है. परतु यदि मनुष्य निरंतर सुख की ओर मन को लगाये रहै तो उस के समीप सदाही सुख रूपवान सा बना रहता है. इसीलिये योगी लोग दुःख की जगह भी सुखही ध्यान किया करते हैं । योग शास्त्र का यह सिद्धान्त है कि सुख दुःख समान मानना, परतु यह बात विना अभ्यास नहीं हो सकी, घेरंड महाराज ने सब मुद्राओं को शारीरक दुःख निवृत्ति के लिये कहा है परन्तु इसको मानसिक दुःख निवृत्ति के लिये बताया है । अभ्यास करते २ जब इस प्रकार की शक्ति हो जावे कि चित्त वृत्ति जिस में लगावे उसीमें चुपी रहै अन्यत्र न टलै तो समाधि सिद्ध हो गई । बस सब से बढ़ कर चित्त वृत्ति निरोध के अभ्यास को बढ़ाने वाली यह योनि मुद्रा है ॥

शिव संहिता आदि ग्रन्थों में इस योनि मुद्रा को दूसरे प्रकार से कहा है परंतु वह इस घेरंड महाराज की दर्शाई हुई योनि मुद्रा के तुल्य शीघ्र फलदायक नहीं है । वहां इस प्रकार लिखा है—प्रथम मन को पूरक योग से अपने मूलाधार पद्म में वायु के सहित पूरण करै बाद योनिस्थान (गुदा और लिंग के बीच के स्थान को योनि स्थान कहते हैं) को पैरो से सिकोड़ कर भगाकार बनावे । उसी समय में उस ब्रह्मयोनि में कामदेव का ध्यान करै, यह कामदेव बन्धु पुष्प की तरह लाल वर्ण कोटि सूर्य की तरह तेज, कोटि चन्द्रमाकी भांति शीतल है यह भी चिन्ता करै. फिर ऊपर परमाशक्ति को भी इसी प्रकार ध्यान करै कि मानों वे शक्ति अग्नि शिखा की तरह, सूक्ष्म रूप, चैतन्य भाव हैं और वे परमात्मा के सहित एकत्र हो मिली हैं । इस प्रकार ध्यान करना होगा फिर प्राणायाम के बल से स्थूल, सूक्ष्म और कारण इन तीन प्रकार के स्व-

चक्रों से युक्त जीवात्मा कुंडलिनी शक्ति के सहित सुषुम्ना के छेद हो के ब्रह्म मार्ग में जाता है। शिर के मध्य में जो नीचे मुख कमल है उसकी कर्णिका के भीतर कुण्डलिनी शक्ति परमात्मा के साथ सङ्गम में आसक्त हो रही है उसके संगम से पाटल वर्ण (कुछ सफेदी लिये पीला) तेजवान् आनन्द मय अमृत की धारा बहती है। जीवात्मा योग बल से मूलाधार के ऊपर हो के उठ कर उसी बहते हुये अमृत को पान करता है। इसी प्रकार फिर आप नीचे की तरफ निकल के मूलाधारमें स्थित ब्रह्मयोनि में आकर प्रवेश करे। इसी प्रकार साधक जीवात्मा को ब्रह्मयोनि में निकाल पैठार रूपी प्राणायाम की मात्रा शुरू करे। इसी प्रकार प्राणायाम तीन बार करना चाहिये। मूलाधार पद्म में ब्रह्मयोनि में प्राप्त कुण्डलिनी परमात्मा की प्राण रूपिणी हो रही हैं। इसी प्रकार निकाल पैठार के बाद फिर भी वही जीवात्मा कालाग्नि आदि शिवात्मक ब्रह्म योनि में लय प्राप्त होता है, इसी प्रकार चिन्ता करे। इसी को योनि मुद्रा कहते हैं। यह मुद्रा जितनी मुद्रा हैं सब में प्रधान है। इस के प्रभाव से साधक समस्त कर्म अच्छी तरह से सिद्ध कर सक्ता है। इन सब बातों का गूढ़ तात्पर्य यह है कि श्वास के रोकने के सहित मानसिक वृत्ति को जिस तरफ लगाइये उसी तरफ वह लग कर उसी प्रकार का सुख दुःख अनुभव करेगा। आप अपने मन को यदि पूरी तौर से इस कल्पना में लगावें कि हम नर्क कुण्ड में डुबोये जा रहे हैं, हमें लोहे के तप्त खंभे में कोई चिपकाय रहा है तो वही दुःख साक्षात् होगा, यदि इन्द्रासन पर बैठे देव लोक की साम्राज भोग रहे हैं ऐसी कल्पना कीजियेगा तो वही सुख प्राप्त होगा। इसी निमित्त मानसिक स्थिति के अभ्यास के लिये हठ योग को घेरंड महाराज ने उत्तम समझ कर ऐसी ऐसी क्रियायें सिद्ध की हैं॥

योनिमुद्रा का फल।

ब्रह्महा भ्रूणहा चैव सुरापी गुरुतल्पगः।
एतैः पापैर्न लिप्येत योनिमुद्रा निबन्धनात् ॥४०॥
यानिपापानिघोराणि, उपपापानि यानिच।
तानिसर्वाणिनश्यन्ति योनिमुद्रानिबन्धनात् ॥४१॥
तस्मादभ्यसनं कुर्य्यात् यदि मुक्तिंसमिच्छति।

जो जन योनिमुद्रा साधन करतेहैं,वे,यदि ब्रह्मघात भी कर चुकेहों या बाल घात कर चुके हो अथवा सुरा पान करते २ पियक्कड़ हो गये हों, या गुरुपत्नी के साथ पापाचरण कर चुके हों तो भी इनके महापापों से लिप्त नहीं होते ॥

और भी जो २ बड़े २ भयानक महा पाप हैं, या जितने उपपाप हैं वे भी सब इस योनिमुद्रा के निबन्धन से नष्ट हो जातेहैं, इसमे यदि कोई मुक्ति की इच्छा करै तो वह योनिमुद्रा का अभ्यास जरूर करै ॥

तात्पर्य्य–ब्रह्मघात आदि पाप से छूटने का जहां कहीं कम आता है वहां अक्सर लोग शङ्का कर बैठते हैं कि यह तो और भी पाप का बढ़ाना ठहरा यानी रोजर पाप करो और रोजर योनिमुद्रा आदि कर्म साधन करो तो कभी पाप नहीं लगेगा,'बस मानो पाप करने के लिये एक अभय मार्ग ठहराया गया। विवेचना–देखो ऊपरके श्लोक में लिखा है कि 'एतैः पापैर्नलिप्येत" अर्थात् इन पापो से लिप्त न हो। सो लिप्त होने का क्या तात्पर्य्य है? लिप्त कहते हैं जो कि रात दिन उसीमें मन वच कर्म से लिपटा रहे, अर्थात् लगा रहे, परन्तु जो शख्स योनि मुद्रा का अभ्यास करैगा वह कदाचित् ब्रह्म हत्या गुरु पत्नी

प्रसङ्ग आदि पापों में लिप्त अर्थात् मन वच कर्म से रात दिन लगा भी हो तो इस आनन्द की क्रिया में लगने से फिर उसको उधर के पापों के करने की फुरसत नहीं रह जावेगी । आप जानते हैं कि एक तुच्छ बात चौपड़ शतरंज का खेल है जिसमें कोई भी फल नहीं परन्तु जब मनुष्य का चित्त उधर लग जाता है तो रोटी खाना तक नहीं अच्छा लगता और यहां तक देखा गया है कि शाम से खेलने बैठे और सबेरा होगया, सूर्य्य उदय हो आये, निद्रा का सुख भस्मीभूत कर, प्रिय समागम में तिलाञ्जलि दे पौ-बारा-छह छकड़ी-कर रहे हैं, तो यदि योग की क्रिया में मन लग जावे तो कहिये फिर वह लिप्तता जो कि दिन रात भयानक पापों की ओर तुरङ्ग के समान् दौड़ता हुआ मन विश्राम नहीं पाता था क्यों कर रह सक्ता है ? अर्थात् योनिमुद्रा के अद्भुत सुख की साधना से ये सब भूल जावेंगे और यह मूढ़ चित्त उन सब महा पापों से तथा उप पापों से अनायास बच कर विशुद्धता लाभ करैगा, इसीसे श्लोक में एक पद लिखा है कि "योनिमुद्रा निबन्धनात्" अर्थात् योनिमुद्रा साधन के बन्धन से। तात्पर्य्य यह कि योनिमुद्रा का साधन उसको बान्धे रहैगा कि सो प्रकार उक्त महा पातक तथा उप पातकों के निकट नहीं जानेपावेगा, इससे यह सिद्ध भया कि फल के लिखने वाले घेरण्ड महाराज ने मिथ्या नहीं लिखा, जो शक्त साधन करैगा वह अवश्य सब पापों से मुक्त हो सिद्धि भाव को प्राप्त होगा, अन्त में मुक्ति लाभ करैगा । घेरण्ड जी ने साफ लिखा है कि जो मुक्ति की इच्छा करैं अर्थात् यदि चाहै कि हम सब पापों से छूटैं वेही इस मुद्रा का अभ्यास करैं, तात्पर्य्य यह कि दूसरे से नहीं हो सकैगा ।

वज्रोणीमुद्रा ।

धरामवष्टभ्यकरयोस्तलाभ्यां ऊर्द्धं क्षिपेत्पादयुगंशिरःखे ।
शक्तिप्रबोधायचिरजीवनाय वज्रोणिमुद्रांमुनयोवदन्ति ४२

दोनों हाथों की गदोरी से धरातल को पकड़ के दोनो पावों को ऊपर उठाय दे और उधर शिर भी आकाश में उठाय दे केवल हाथ के बल खड़ारहै, इसीको मुनिलोग वज्रोणीमुद्रा कहते हैं, इसके अभ्यास से शरीर की शक्ति (ताकत) बढ़ती है और बहुत दिन तक जी सक्ता है ॥

वज्रोणीमुद्रा का विशेष फल ।

श्रयंयोगोयोगश्रेष्ठो योगिनांमुक्तिकारणम् ।
श्रयंहितप्रदोयोगो योगिनांसिद्धिदायकः ॥४३॥
एतद्योगप्रसादेन बिन्दुसिद्धिर्भवेद्ध्रुवम् ।
सिद्धेबिन्दौमहायत्ने किंनसिध्यतिभूतले ॥४४॥
भोगेनमहतायुक्तो यदिमुद्रांसमाचरेत् ।
तथापिसकलासिद्धि स्तस्यभवतिनिश्चितम् ॥४५॥

यह मुद्रा साधन रूप योग सब योगों से श्रेष्ठ है और योगियों के मुक्ति का कारण है, फिर यह योग अत्यन्त हित का देनेवाला है, तथा योगियों को सब प्रकार सिद्धि दायक है ॥

इसी योग के प्रसाद से बिन्दु की सिद्धि हो जाती है अर्थात् इस मुद्रा के अभ्यास से शरीर रक्षित कामदेव किसी प्रकार बूंदों के द्वारा नहीं झर सक्ता (रक्षित कामदेव भी मूत्र के सग, वा स्वप्नादि दोष से कभी झर जाता है वह इसके अभ्यास से बँधा रहता है) जब इस प्रकार के महा यत्न से बिन्दु सिद्ध हो जाता है अर्थात् शरीर में कामदेव बँध जाता है तब भूतल में कौनसी बात है जो सिद्ध न हो जावे ? अर्थात् सब सिद्धि प्राप्त हो सक्ती है क्योंकि कामदेव ही शरीर का राजा है। जब शरीर में कान्ति आ जावेगी तब उसको देख कर लोगों का चित्त

आकर्षित होगा, स्नेह के स्थान पर स्नेह, भय के स्थान पर भय, मनोरथ के स्थान पर मनोरथ सिद्धि जान कर लोग वशीभूत हो जायेंगे ॥

समस्त बड़े २ भोगों से युक्त पुरुष भी यदि इस मुद्रा का अभ्यास करे तो सब प्रकार की सिद्धियां निश्चय करके उसको प्राप्त होती हैं। अर्थात् धनधान्य कुटुम्बादि नाना विभव रहते महात्मापन उसमें नहीं आ सक्ता, वह भी बहुत सी बातों की आकांक्षा से महा दरिद्र साधु सन्त फकीर वगैरा के मुंह की ओर ताका करता है, सो इसके साधन से यह बात न होकर इसकी ओर भी बड़े २ विभव धारी ताका करेंगे ॥

शक्तिचालनी मुद्रा।

मूलाधारेआत्मशक्तिः कुण्डलीपरदेवता।
शयिताभुजगाकारा सार्द्धत्रिवलयान्विता ॥४६॥
यावत्सानिद्रितादेहे तावज्जीवःपशुर्यथा।
ज्ञानंनजायतेतावत् कोटियोगंसमभ्यसेत् ॥४७॥

मूलाधार में आत्म शक्ति (परमात्मा की ताकत) सब से परे देवता कुण्डलिनी (जिसका बयान पीछे कर आये है) सर्प की तरह साढ़े तीन लपेटे की गुंडरी बांधे सो रही है ॥

जब तक यह देह में सोती रहती है तब तक जीव पशु की तरह अज्ञान बना रहता है, सत् असत् कुछ भी नहीं जान पड़ता। तब तक चाहे कोटि प्रकार योगाभ्यास करे कभी सच्चा ज्ञान नहीं होगा। अर्थात् जैसे पशुका भी पासछोड़ एकड़ पत्थर के न खानेमें विचार रहताहै नहीं पर इतनाही मात्र रहता है, किन्तु उसके ऊपर ४ मन बोझेकी जगह ८ मन लाद दें तो पहिले यह उसको मालुम नहीं पड़ेगा कि यह बोझा मेरी

पीठ पर आने से कष्ट दायक होगा इससे लादनेवाले को दसारो से रोक सके बल्कि लाद देने पर जब नहीं चल सकैगा तब बैठ जावेगा, मार खायगा, नाना प्रकार की दुर्दशा भोगैगा । उधर लादनेवाला भी बिना उसकी सहसाई की वेदना जान उसको परिश्रार समझ के मारते २ एक बार ऐसा मारा कि वह पशु मर गया, अन्तमें उधर पशु अपनी अज्ञानता से दुःख पाय प्राण त्याग किया । इधर वह लादने वाला मनुष्य भी अपने काम काजी पशु से हाथ धो बैठा, जिसकी हानि किया और ऊपर से पशु हत्या का भागी हो लोकमें निन्दित हुआ इत्यादि रीतिसे दोनो अर्थात् पशु और मनुष्य बराबर ज्ञानवाले ठहरे विचार शक्ति किसी में नहीं आई । यह सब विवेक जब तक कुण्डलिनी शक्ति सोती रहती है कभी नहीं होता, यदि वह जगी रहती है तो चहै योगाभ्यास करै चहै नहीं, चहै कर दिखाने की शक्ति रहै चहै नहीं, पर यह सत् यह असत् ऐसा विज्ञान तो उसके हृदय में अवश्य निरन्तर प्रज्वलित रहता है ॥

उद्घाटयेत्कपाटञ्चयथा कुञ्चिकयाहठात् ।
कुण्डलिन्याप्रबोधेन ब्रह्मद्वारंप्रबोधयेत् ॥४८॥

इसी निमित्त कहा है कि जैसे ताले से बन्द किवाड़ को कुञ्जी से पट पट उघारके भीतर पैठा जाताहै इसी प्रकार कुण्डलिनीके जागने पर ब्रह्म द्वार अर्थात् मस्तिष्क (मगज) प्रभेद किया जा सक्ता है अर्थात् चैतन्य किया जा सक्ता है कि जिस्से सत् असत् का ज्ञान हो जावे ॥

शक्तिचालिनी मुद्रा की विधि ।

नाभिंसंवेष्टयवस्त्रेण नचनग्नोवहिस्थितः ।
गोपनीयगृहेस्थित्वा शक्तिचालनमभ्यसेत् ॥४९॥

एक वस्त्र के द्वारा नाभि देश को लपेटके किसी गुप्त गृह में बैठकर

शक्ति चालनी मुद्रा का अभ्यास करै, किन्तु नग्न होके बहिर्भाग में इस योग का साधन करना उचित नहीं है । अर्थात् यह योग नग्न हो के गुप्त स्थान में करना चाहिये ॥

वितस्तिप्रमितंदीर्घं विस्तारेचतुरंगुलं ।
मृदुलंधवलंसूक्ष्मं वेष्ठनाम्वरलक्षणम् ॥५०॥
एवमम्बरयुक्तञ्च कटिसूत्रेणयोजयेत् ।

एक बिलस्त लम्बी और चार अंगुल चौड़ा कोमल और महीन सुफेद वस्त्र से नाभि को वेष्ठन करै (लपेटै) और फिर उसी वस्त्र को कटि सूत्र (करधनी) से बांधे ॥

भस्मनागात्रसंलिप्तं सिद्धासनंसमाचरेत् ।
नासाभ्यांप्राणमाकृष्य अपानेयोजयेद्बलात् ॥५१॥
तावदाकुञ्चयेद्गुह्यं शनैरश्विनिमुद्रया ।
यावद्गच्छेत्सुषुम्नायां वायुःप्रकाशयेद्धठात् ॥५२॥

भस्म (राख) से शरीर को लेपन करै और सिद्धासन बांध कर बैठे, फिर नासिका के दोनो छेदों से प्राण वायु को खींच के बल के सहित अपान वायु के साथ मिलाय दे, जब तक वायु सुषुम्ना नाड़ी के भीतर जाके प्रकाशित न हो तब तक अश्विनी मुद्रा के द्वारा धीरे २ गुह्य प्रदेश को सिकोड़े ॥

तदावायुप्रबन्धेन कुम्भिकाचभुजङ्गिनी ।
बद्धश्वासस्ततोभूत्वा ऊर्द्धमार्गंप्रपद्यते ॥५३॥

इसी प्रकार निश्वास को रोंक के कुंभक प्राणायाम धारण करै तो

भुजङ्गाकार कुण्डलिनी शक्ति जाग के ऊपर की ओर उठती है। अर्थात् सहस्र दल कमल में परमात्मा के सहित मिल जाती है ॥

विनाशक्तेश्चालनेन योनिमुद्रा न सिद्धयति।
आदौचालनमस्य योनिमुद्रां समभ्यसेत् ॥५४॥

बिना शक्ति चालिनी मुद्रा के अभ्यास किये योनि मुद्रा कभी सिद्ध नहीं हो सकी इसें प्रथम इस शक्ति चालिनी मुद्रा का अभ्यास कर ले तब योनि मुद्रा अभ्यास करे ॥

इति ते कथितं चण्डकापाले शक्तिचालनम्।
गोपनीयं प्रयत्नेन दिनेदिने समभ्यसेत् ॥५५॥

घेरण्ड महाराज कहतेहैं कि हे चण्डकापालि। तुम्हारे सिकट यह मुद्रा मैंने कही जिसका नाम शक्तिचालिनी है, यह मुद्रा यत्न से दिन २ अभ्यास करना चाहिये और यह अभ्यास करना गुप्त भाव से रहै सहसा प्रसिद्ध न होने पावे ॥

शक्तिचालिनीमुद्रा का फल।

मुद्रेयं परमागोप्या जरामरण नाशिनी।
तस्मादभ्यसनंकुर्य्याद्योगिभिःसिद्धिकांक्षिभिः ॥५६॥

यह मुद्रा परम गोप्य है (इसकी क्रिया गुप्त करनी चाहिये) इसके द्वारा बुढाई और मृत्यु दोनों नष्ट हो जाती है, इसीसे सिद्धि के चाहने वाले योगियों को इसका अभ्यास अवश्य करना चाहिये।

नित्यंयोभ्यसतेयोगी सिद्धिस्तस्यकरेस्थिताः।
तस्यविग्रहसिद्धिस्याद्रोगाणां संक्षयोभवेत् ॥५७॥

जो योगी इस मुद्रा को प्रतिदिन अभ्यास करता है उसके हाथ में सिद्धि आ जाती है अर्थात् वह पूरा सिद्ध हो जाता है, और उसी को विग्रह सिद्धि होती है (विग्रह सिद्धि वह है जिसमें विशेष ग्रहण की शक्ति होती है अर्थात् कोई कार्य करै झटपट पूरा हो जायगा) और उसके रोगराशि नष्ट हो जाते हैं ॥

तड़ागी मुद्रा ।

उदरंपश्चिमोत्तानं कृत्वाचतड़ागाकृतिः ।
तड़ागीसा परामुद्रा जरामृत्युविनाशिनी ॥५८॥

पश्चिमोत्तान अर्थात् उत्तान होकर पड़े और पेट को तड़ाग (तलाव) की तरह गहिरा करै और कुंभक प्राणायाम करै इसी को तड़ागी मुद्रा कहते हैं । यह मुद्रा एक प्रधान गिनी जाती है, इसके द्वारा बुढ़ाई और मृत्यु जीती जा सकी है ॥

मांडूकी मुद्रा ।

मुखंसम्मुद्रितं कृत्वा जिह्वामूलं प्रचालयेत् ।
शनैर्ग्रसेदमृतं तन्मांडूकी मुद्रिकां विदुः ॥५९॥

मुंह को मूंद ले और जिह्वा के मूल को तलुवे के ऊपर की ओर चलावे और धीरे २ सहस्र दल कमल निर्गत अमृत पान करै । इसी को मांडूकीमुद्रा कहते है ॥

मांडूकीमुद्रा का फल ।

वलितं पलितं नैव जायते नित्ययौवनम् ।
नकेशी जायतेपाको यः कुर्यान्नित्यमांडुकीं ॥६०॥

मांडूकी मुद्रा का नित्य अभ्यास जो कोई करे उसके शरीरमें वलित (चमड़े की सिकुड़न) पलित (मांस गलकर हड्डी मात्र का रहना) ये दो शरीर के शिथिल करनेवाले आयु के नाशक आगम नहीं आ सक्ते और निरहही युवावस्था सी बनी रहती है, तथा शिर के बाल भी नहीं पकते ॥

शांभवी मुद्रा।

नेत्रांजनंसमालोक्य आत्मारामंनिरीक्षयेत्।
साभवेच्छांभवीमुद्रा सर्वतंत्रेषुगोपिता ॥६१॥

दोनों भौहों के बीच में वा दोनों भौंहों कोही स्थिर दृष्टि से अव लोकन करके और मन को एक रस करके वही आत्मा राम (परमात्मा) को देखे (मानो सच्चिदानन्द वही बैठे हैं) इसी को शांभवी मुद्रा कहते हैं, यह सब तन्त्रों में गुप्त मानी गई है ॥

शांभवी मुद्रा का फल

वेदशास्त्रपुराणानि सामान्यगणिकाइव।
इयन्तुशांभवीमुद्रा गुप्ताकुलवधूरिव ॥६२॥

४ वेद, ६ शास्त्र (न्यायादि तथा धर्मशास्त्र) १८ पुराण ये सब जैसे गणिका (वेश्या) लोग सब जगह प्रसिद्ध रहती हैं, किसी से गुप्त नहीं रहतीं वैसेही सामान्य वस्तु हैं, परन्तु यह शांभवी मुद्रा जैसे कुल वधू बड़ी यत्न से सहसा किसी की दृष्टि में नहीं पड़तीं वैसे ही जानिये ॥

सएवआदिनाथश्च सचनारायणःस्वयं।
सचब्रह्मासृष्टिकारी योमुद्रांवेत्तिशांभवी ॥६३॥

जो मनुष्य इस शांभवी मुद्रा को जानता है वह आदिनाथ (सबका प्रथम स्वामी) है वही नारायण (जीव समूह की शक्ति) है, और वही जग रचने वाला ब्रह्मा भी है ॥

सत्यं सत्यं पुनस्सत्यं सत्यमूचेमहेश्वरः ।
शांभवांयोविजानीयात् सचब्रह्मनचान्यथा ॥६४॥

जो मनुष्य इस शांभवी मुद्रा को जानता है वही मूर्तिमान ब्रह्म है, इस बात को महादेव जी तीन बार (त्रिवाचा) करके सत्य कहते हैं इसमें संशय नहीं है ॥

पंचधारणा मुद्रा ।

कथिताशांभवीमुद्रा शृणुष्वपंचधारणां ।
धारणानिसमासाद्य किंनसिद्ध्यतिभूतले ॥६५॥

घेरण्ड महाराज कहतेहैं शांभवी मुद्रा तो कह आये अब हे चण्डकापालि ! तुम पञ्चधारणा मुद्रा सुनो यह पञ्चधारणा मुद्रा भी पांच प्रकार की है जिन पांचोंके प्राप्त होने पर फिर भूतलमें कौन ऐसी बात है जो सिद्ध न हो ? अर्थात् सब कुछ सिद्ध हो जाता है ॥

अनेननरदेहेन स्वर्गेषुगमनागमम् ।
मनोगतिर्भवेत्तस्य खेचरत्वंनचान्यथा ॥६६॥

ये पांच प्रकार की धारणा मुद्रा सिद्ध होने पर इसी नरदेहमें (बिना मरे; जीते जी) स्वर्गलोक में आना जाना हो सक्ता है, और उस साधन करनेवाले की मनोगति (जहां इच्छा वहां जाय) हो जाती है, तथा खेचरत्व (आकाश में उड़ने की शक्ति) प्राप्त हो जाती है (पांच प्रकार

की धारणा पहिले कह आये हैं, जैसे-पार्थिवी १, आम्भसी २, वायवी ३, आग्नेयी ४, आकाशी ५,)

पार्थिवीधारणा मुद्रा।

यत्तत्वंहरितालदेशरचितं भौमंलकारान्वितं।
वेशास्त्रंकमलासनेनसहितं कृत्वाहृदिस्थायिनं॥
प्राणांस्तत्रविनीयपंचघटिकां चिंतान्वितांधारये।
देपाशाम्भकरीभवेत्क्षितिजयं कुर्यादधोधारणा॥६७॥

पृथिवी तत्व का वर्ण हरिताल के समान पीला है, इस पृथिवीतत्व का बीज लकार है, इसका आकार चौकोना बराबर है, ब्रह्मा इसके देवता हैं, योग के प्रभाव से उक्त सब वस्तुओं के सहित हृदय में ध्यान कर स्थायी करै, उसी समय में प्राणवायु को आकर्षण करके कुंभक के द्वारा पांच घड़ी (दो घंटे) चित्त न डुगने पावे धारण किये रहै, इसी स्तंभकरी (श्वास ठहरानेवाली) क्रिया को पार्थिवी धारणा कहते हैं, इसका दूसरा नाम अधोधारणा भी है, इसके धारण करनेसे अर्थात् अभ्यास करने से पृथिवी जीती जा सक्ती है, अर्थात् पृथिवी सम्बन्धी कोई भी बाधा हो तो इसके धारक को कुछ भी विघ्न नहीं कर सक्ती॥

पार्थिवीधारणामुद्रा का फल।

पार्थिवीधारणांमुद्रां यःकरोतीनित्यशः।
मृत्युंजयःस्वयंसोपि ससिद्धोविचरेद्भुवि॥६८॥

जो मनुष्य प्रतिदिन (रोज २) इस पार्थिवीधारणा मुद्रा को करता है वही निज मृत्युञ्जय हो जाता है, अर्थात् कभी नहीं मरता, और वही सिद्ध हो के पृथिवी में विचरण करता है॥

आम्भसीधारणामुद्रा ।

शंखेन्दुप्रतिमञ्चकुन्दधवलं तत्वंकिलालंशुभ ।
तत्पीयूषवकारबीजसहितं युक्तंसदाविष्णुना ॥
प्राणांस्तत्रविनीयपंचघटिकां चित्तान्वितोधारये ।
देषादुःसहतापपापहरिणी स्यादाम्भसीधारणा॥६९॥

जल तत्व का वर्ण शरद तथा चन्द्रमा की तुल्य विमल और कुन्द पुष्प की तरह उज्वल है, और शोभन है, इसकी अमृत संज्ञा है और वकार इसका बीज है, और विष्णु इसके देवता हैं, योग के प्रभाव से हृदय के बीच उक्त जल तत्व के समुदाय का ध्यान करै और उसी समय प्राणवायु को खींच कर पांच घड़ी चित्त स्थिर करके कुम्भक प्राणायाम में स्थिर रहै, इसीको आम्भसी धारण मुद्रा कहतेहैं, यही मुद्रा बड़े २ दुःसह तापों को तथा पापों को नाश करती है ॥

आम्भसीमुद्रा का फल ।

आम्भसीपरमांमुद्रां योजानातिसयोगवित् ।
जलेचगंभीरेघोरे मरणंतस्यनोभवेत् ॥७०॥

जो साधक इस आम्भसी मुद्रा को जानता है वही योगवित् (योग का जाननेवाला) है, यह यदि महा भयानक और गंभीर (गहिरे) जल में भी यह जावे तो उसका मरण नहीं हो सक्ता, अर्थात् इयाम साधन के प्रभाव से वह डूब नहीं सक्ता ॥

इयंतुपरमामुद्रा गोपनीयाप्रयत्नतः ।
प्रकाशात्सिद्धिहानिः स्यात्सत्यंवच्मिचतत्वत ॥७१॥

यही शांभवी मुद्रा परम श्रेष्ठ है और यह यत्न के सहित गुप्त करने योग्य है, इसके प्रकाश से सिद्धि की हानि होती है, घेरण्डजी कहते हैं यह मैं खूब विचार करके सत्य कहता हूं ॥

तात्पर्य यह कि यदि इसको करनेवाला सब जगह कहै कि हम इस प्रकार की क्रिया करते हैं तो बहुत से लोग इस के करने की अभिलाषा करके उसके पास आवैंगे जिस्से उसके चित्त की एकाग्रता में विघ्न डालेंगे इससे गुप्त रीति से साधने करने पर कोई भी बाधा नहीं पहुंच सकैगी और क्रम से अभ्यास बढ़ जावेगा, परन्तु जो नितान्त दृढ़ हो इस को सीखा चाहै उसके लिये गुप्त नहीं हो सकी, यही तात्पर्य घेरण्ड महाराज का है ॥

आग्नेयी मुद्रा।

यन्नाभिस्थितमिन्द्रगोपसदृशं,बीजंत्रिकोणान्वितम् ।
तत्वंतेज मयं प्रदीप्त मरुणं, रुद्रेण यत्सिद्धिदम् ॥
प्राणांस्तत्र विनीयपंचघटिकां, चित्तान्वितंधारये ।
देपाकाल भगोरभीतिं हरिणी, वैश्वानरीधारणा ॥७२॥

अग्नि तत्व का स्थान नाभी स्थल है, इसका वर्ण इन्द्रगोप कीट (बीरबहूटी) की तरह लाल है, रकार इसका बीज है, इसका आकार त्रिकोण और रुद्र इसके देवता हैं, यह तत्व तेज का पुञ्ज है यह दीप्तमान (प्रकाश करने वाला) और सिद्धि दायक है, योग बल से इस अग्नि तत्व को उदय कराय के एकाग्र चित्त हो पांच घड़ी तक कुम्भक प्राणायाम से प्राण वायु को धारण करे। इसीका नाम आग्नेयीधारणा मुद्रा है, इसके अभ्यास करने से संसार का भय दूर हो जाता है, और अग्नि के द्वारा साधक की मृत्यु कभी नहीं हो सकी ॥

आग्नेयी धारणा मुद्रा का फल ।

प्रदीप्ते ज्वलितेवन्हौ पतितो यदि साधकः ।
एतन्मुद्रा प्रसादेन सजीवति न मृत्युभाक् ॥७३॥

यदि साधक सूब बरती हुई धकधकाती आग में पड़ जावे तोभी इस आग्नेयीधारणा मुद्रा के प्रसाद से जीता रहेगा, कभी मृत्यु का भागी नहीं होगा ।

वायवीधारणा मुद्रा ।

यद्भिन्नांजनपुंज सन्निभमिदं, धूम्रावभासंपरम् ।
तत्वंसत्यमयं यकारसहितं, यत्रेश्वरी देवता ॥
प्राणांस्तत्रविनीयपंचघटिकां चित्तान्वितांधारये।
देषाखेगमनंकरोतियमिनां, स्याद्वायवीधारणा ॥७४॥

वायु तत्व का वर्ण घिसा हुआ अञ्जन (सुर्मा) तथा धुवें की तरह है, यकार इसका बीज है और ईश्वर इसके देवता हैं, यह तत्व सत्व-गुण मय है, योग के प्रभाव से इस वायु तत्व को उदित कराय के एकाग्र चित्त हो प्राण वायु को आकर्षण कर कुम्भक प्राणायाम के द्वार पांच घड़ी धारण करै, इसी का नाम वायवी मुद्रा है, यह मुद्रा साधन करने वालेको वायु से कभी मृत्यु नहीं हो सक्ती, और साधक की शक्ति आकाश मार्ग जाने की भी हो जाती है ।

वायवीधारणा मुद्रा का फल ।

इयन्तु परमा मुद्रा जरा मृत्यु विनाशिनी ।
वायुनाम्रियते नापिखे च गति प्रदायिनी ॥७५॥

यह मुद्रा परम श्रेष्ठ जरा (बुढ़ाई) और मरण इन दोनों को नष्ट
कर डालती है और साधक वायु के किसी प्रकार के कोप से नहीं मर
सक्ता, और यह मुद्रा आकाश गमन की शक्ति को भी देनेवाली है ॥

सठायभक्तिहीनाय नदेयायस्यकस्यचित् ।
दत्तेचसिद्धिहानिः स्यात्सत्यंवच्मिचण्डते ॥७६॥

घेरण्ड जी कहते हैं कि हे चण्डकापालि ! इस मुद्रा की विधि सठ
(जो लोगों को ठगने के लिये चाहे) को और भक्ति हीन (जो चाहे
कि सिर्फ जान कर आचरण न करें, लोगों को धोखा दे सिद्धाई फैलावें)
को कभी नहीं बताना चाहिये, और भी जिस तिस को कभी नहीं देना
चाहिये, यदि दे तो देने वाले की सिद्धि में हानि होती है, अर्थात् उन
सठ आदि की कलई खुलने पर यथार्थ सिद्ध को भी लोग सठ आदि
समझ कर धाधा डाला करते हैं, घेरण्ड जी प्रतिज्ञा करते हैं कि हम यह
तुम से सत्य कहते हैं ॥

आकाशी धारणा मुद्रा ।

यत्सिन्धौवरशुद्धवारिसदृशं व्योमंपरंभासितं ।
तत्वंदेवसदाशिवेनसहितं बीजंहकारान्वितं ॥
प्राणांस्तत्रविनीयपंचघटिकां चित्तान्वितांधारये,।
देषामोक्षकपाटभेदनकरी कुर्यान्नभोधारणा ॥७७॥

आकाशतत्व का वर्ण समुद्र के विशुद्ध जल की तरह प्रकाशित होता
है, सदाशिव इसके देवता हैं, हकार इसका बीज है, इसी आकाश तत्व
को सदाशिव के सहित योग प्रभाव से उदित कर एकाग्र मन हो ध्यान
करे और उसी समय प्राण वायु को खींच कर कुम्भक प्राणायम से पांच

यही धारण किये रहै, इसी को आकाशी धारण कहते हैं, यह मुद्रा मोक्ष के किवाड़ों को खोल देती है, अर्थात् साधक शीघ्र मुक्ति हो जाता है ॥

आकाशी धारण मुद्रा का फल ।

आकाशीधारणांमुद्रां योवेत्तिसैवयोगवित् ।
नमृत्युर्जीयतेतस्य प्रलयेनावसीदति ॥७८॥

जो मनुष्य आकाशी मुद्रा को जानता है वही निश्चय योग का जाननेवाला है, उसकी मृत्यु भी किसी से नहीं होती और वह प्रलय होनेपर भी ज्यों का त्यों बना रहता है ॥

ये पंच धारण मुद्रा समाप्त हुई ।

अश्विनी मुद्रा ।

आकुंचयेद्गुद्द्वारं प्रकाशयेत्पुनःपुनः ।
साभवेदश्विनीमुद्रा शक्तिप्रबोधकारिणी ॥७९॥

साधक फिर २ अपने गुह्य द्वार को सिकोड़े और फैलावे इसी का नाम अश्विनी मुद्रा है, यह मुद्रा शक्ति (ताकत) को जगाने वाली है ॥

अश्वनी मुद्रा का फल ।

अश्विनीपरमामुद्रा गुह्यरोगविनाशिनी ।
बलपुष्टिकरीचैव अकालमरणंहरेत् ॥८०॥

यह श्रेष्ठ अश्विनी मुद्रा गुदा के जितने रोग हैं सबको नष्ट करती बल और पुष्टि का बढ़ाती और अकाल मृत्यु को भी हरलेती है ॥

पाशिनी मुद्रा ।

कण्ठे पृष्ठे क्षिपेत्पादौ पाशवं दृढ़ बन्धने ।
साएव पाशिनीमुद्रा शक्तिप्रबोध कारिणी ॥८१॥

दोनों पाव कण्ठ (गरदन) की पीठमें डाल कर जैसे पाश (रस्से) से बाधा जाता है तैसाही दृढ़ (मजबूती से) बाधै, वही पाशिनी मुद्रा कही जाती है, यह भी शक्ति (ताकत) जगाने वाली है ॥

पाशिनी मुद्रा का फल ।

पाशिनी महतीमुद्रा बल पुष्टि विधायिनी ।
साधनीया प्रयत्नेन साधकैः सिद्धिकांक्षिभिः ॥८॥२

यह पाशिनी एक बड़ी भारी मुद्रा है, यह बल और पुष्टि दोनोंको बढ़ानेवाली है, सिद्धि के चाहनेवाले साधक लोग इसको अवश्य बड़े यत्न से साधन करें ॥

काकी मुद्रा ।

काक चंचुवदास्येन पिबेद्वायुं शनैः शनैः ।
काकी मुद्रा भवेदेषा सर्व रोग विनाशिनी ॥८३॥

अपने मुख को कौवे की ठोट की तरह बनायके धीरे २ वायु पान करे इसी का नाम काकी मुद्रा है । यह सब प्रकार के रोगों को नष्ट करता है ॥

काकीमुद्रा परामुद्रा सर्व तन्त्रेषु गोपिता ।
अस्या प्रसाद मात्रेण नकाकवत्‌रोगी भवेत ॥८४॥

यह काकी मुद्रा बहुत उत्तम है और सब तन्त्रों में गोपनीयहै, इस के प्रसाद मात्र से मनुष्य काक की तरह रोग रहित हो जाता है ॥

मातङ्गिनीमुद्रा ।

कण्ठमग्नेजलेस्थित्वा नासाभ्यांजलमाहरेत् ।
मुखान्निर्गमयेत्पश्चात् पुनर्वक्त्रेण चाहरेत् ॥८४॥
नासाभ्यां रेचयेत्पश्चात् कुर्यादेवं पुनः पुनः ।
मातङ्गिनी परामुद्रा जरा मृत्यु विनाशिनी ॥८५॥

गला पर्य्यन्त जल में खड़ा हो कर पहिले नाक से जल को खींचके मुख से गिराय दे, फिर मुख से भी जल को खींच के पीछे नाक के दोनो छेदों से बहाय दे, इसी प्रकार बार २ खींचे और फेंके, इसी का नाम मातङ्गिनी मुद्रा है । यह मुद्रा जरा (बुढ़ाई) और मृत्यु को नष्ट कर डालती है ॥

मातङ्गिनी मुद्रा का फल ।

विरले निर्जने देशे स्थित्वा चैकाग्र मानसः ।
कुर्यान्मातङ्गिनी मुद्रां मातङ्गइव जायते ॥८६॥

साधक निर्जन स्थानमें स्थित हो एकाग्र चित्त करके इस मातङ्गिनी मुद्रा को साधे तो मातङ्ग (हाथी) की तरह बली हो जावे ॥

यत्रयत्र स्थितो योगी सुखमत्यन्त मश्नुते ।
तस्मात्सर्व प्रयत्नेन साधयेन्मुद्रिकां परां ॥८७॥

इस मुद्राके साधन करनेवाला योगी यहा जहां स्थित रहैगा, वहाँ

वही अत्यन्त सुख का भोगी होगा, इस लिये सब तरह से प्रयत्न करके इस श्रेष्ठ मुद्रा का साधन करना चाहिये ॥

भुजंगिनी मुद्रा ।

वक्त्रंकिञ्चित्सुप्रसार्य्य चानिलंगलयापिवेत् ।
साभवेद्भुजगीमुद्रा जरामृत्युविनाशिनी ॥८८॥

मुंह को किञ्चित् (थोड़ा सा) फैलाय के गले के द्वारा वायु पानकरे (गला में वायु का धक्का जोर से लगे) इसी को भुजङ्गिनी मुद्रा कहते हैं। यह जरा (बुढ़ाई) को नष्ट करती है ॥

भुजंगिनी मुद्रा का फल ।

यावच्चउदरेरोगमजीर्णादिविशेषतः ।
तत्सर्वंनाशयेदाशु यत्रमुद्राभुजंगिनी ॥८९॥

उदर (पेट) में जितने रोग हों, विशेषकर अजीर्ण हो तो इन सभों को बहुत जल्द यह भुजङ्गिनी मुद्रा नष्ट कर डालती है। तात्पर्य यह कि जहां कहीं ऐसा मौका आनपड़े कि कोई दवा नहीं, कोई वैद्य नहीं, या किसी प्रकार की समता नहीं कि पेट को पीड़ा आदि रोग नष्ट हों और दुःख बड़ा भारी हो रहा है वहां इस मुद्रा के करने से अवश्य तुरंत सब रोग नष्ट हो जाते हैं, यह मुद्रा बहुत सहज है, जिसने कभी अभ्यास भी नहीं किया वह भी सावधान होके करै तो फायदा पहुंच सक्ता है ॥

अब समस्त मुद्राओं का फल कहते हैं ।

इदन्तुमुद्रापटलं कथितंचंडकपाले ।
वल्लभंसर्वसिद्धानां जरामरणनाशनम् ॥९०॥

घेरण्ड मुनि जी कहते हैं कि हे चण्डकपालि ! मैंने तुम्हारे निकट यह मुद्रा पटल (मुद्राओं की गिनती और विधि आदि) कहा यह पटल समस्त सिद्धों का प्रिय है और जरामरण को नष्ट करनेवाला है ॥

सठायभक्तिहीनाय नदेयंयस्यकस्यचित् ।
गोपनीयंप्रयत्नेन दुर्लभंमरुतामपि ॥९१॥

जो शठ हो और भक्ति हीन हो उसको ये सब मुद्रा कभी नहीं देना चाहिये, और जिस तिस को भी देना उचित नहीं है इसको यत्न से गुप्त रखना चाहिये, ये सब मुद्रा देवतों को भी दुर्लभ हैं ॥

ऋजुवेशांतचित्ताय गुरुभक्तिपरायच ।
कुलीनायप्रदातव्यं भोगमुक्तिप्रदायकम् ॥९२॥

ये सर्व मुद्रा भोग और मुक्ति दोनों देनेवाली हैं इससे ऐसे विचार से लोगों को बताना चाहिये जोकि ऋजु (कोमल सुभाव) हों, जो शान्त चित्त (चञ्चलता रहित) हो जो गुरु भक्ति पर (उपदेष्टा के वचन को मानने वाले) हों, और जो कुलीन (जिनको अपने नामी पुरुखों की बदनामी के डरसे उनकी उत्तम लीक पर चले जाने में दृढता हो) उन्हीं को देना चाहिये । तात्पर्य यह कि कोमल चित्त नहीं है और सिद्ध हो गया तो सिवाय संसार को कष्ट देने के और कुछ भी उत्तम कार्य नहीं करेगा यदि चञ्चल हुआ तो उसको इन आसन मुद्रादि से सिद्धिही नहीं प्राप्त होगी, यदि उपदेष्टा के वचन को न मानने वाला हुआ तो भी क्रिया खटपटाग करने से कुछ भी सिद्धि हासिल नहीं होगी, और यदि अपने नामी पुरुखों की बदनामी को नहीं डरैगा तो वह बड़े २ भयानक अत्याचार करके अपनाही प्रयोजन देखेगा ऐसे २ लोगों को इस योग विद्या का उस का उलटा फलदायक होता है अर्थात् भोग वस्तु की

क्रिया से ग्रहण करेंगे परन्तु मुक्ति जो परम पुरुषार्थ है उसको नहीं प्राप्त कर सकेंगे, इसी निमित्त सब जगह "नदातव्य नदातव्य" कहा है ॥

मुद्राणां पटलंह्येतत्सर्वं व्याधि विनाशनम् ।
नित्यमभ्यास शीलस्य, जठराग्निविवर्द्धनम् ॥९३॥

यह मुद्रा पटल सब व्याधि को नष्ट करनेवाला है, और जो नित्य अभ्यास करता है उसके जठर की अग्नि खूब बढ़ाती है ॥

तस्य नोजायतेमृत्यु नास्य जरादिकं तथा ।
नाग्निजल भयंतस्य वायोरपि कुतोभयम् ॥९४॥

जो मनुष्य मुद्रा साधन करते हैं उनको न मृत्यु न बुढ़ापा आदि, न आग, न पानी, न वायु यह सब कभी नहीं भय पहुंचाय सक्ते हैं ॥

कासःश्वासःप्लीहकुष्ठं श्लेष्मरोगाश्चविंशतिः।
मुद्राणां साधनाच्चैव, विनश्यन्ति न संशयः ॥९५॥

मुद्रा साधन करने से, कास (खांसी) श्वास (दमा) प्लीहा (तिल्ली) कुष्ट (कोढ़) तथा बीस प्रकारके श्लेष्मा (कफ के) रोग नष्ट हो जाते हैं ॥

बहुनाकिमि होक्तेन सारं यच्मि च चण्डते ।
नास्तिमुद्रासमंकिञ्चित् सिद्धिदंक्षितिमण्डले ॥९६॥

घेरण्ड महाराज कहते हैं, हे चण्डकपालि । तुम्हारे निकट बहुत कहने से क्या है, किन्तु सार यान मैं कहता हूं कि इस भूमण्डलमें मुद्रा के समान कोई भी वस्तु सिद्ध देने वाली नहीं है ॥

इति घेरण्डसंहितायां घेरण्ड चण्डकपालि सम्वादे घटस्थयोग प्रकरणे मुद्रा प्रयोगोनाम तृतीयोपदेशः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोपदेशः।

अथातः संप्रवक्ष्यामि प्रत्याहारक मुत्तमम्।
यस्यविज्ञानमात्रेण कामादि रिपुनाशनम् ॥१॥

घेरण्ड महाराज कहतेहैं कि हे चण्डकपालि ! मुद्रा कथनके अनन्तर अब हम तुमसे प्रत्याहार उत्तम योग कहते हैं, इसके विशेष ज्ञान मात्र से काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर्य्य ये छः रिपु जो प्राणियोंको इस संसार में सताये रहते हैं वे विनष्ट हो जाते हैं॥

ततस्ततो नियम्यैत दात्मन्येव वशंनयेत् ॥२॥

जिस विषय में चित्त चञ्चल हो के भ्रमण करै, प्रत्याहार के द्वारा उस २ विषय से मन को निवृत्त (लौटा) करके अपने वश में लाना चाहिये॥

पुरस्कार तिरस्कारं, सुश्राव्यं भावमायकम्।
मनस्तस्मान्नियम्यैत दात्मन्येव वशंनयेत् ॥३॥

चहे पुरस्कार (आदर) हो चहे तिरस्कार (निरादर) हो किसी में मनको कभी नहीं फँसाना चाहिये, इसी प्रकार चहे सुश्राव्य (कानको अतिप्यारा शब्द) हो, चहे अश्राव्य (कानों को अप्रिय) हो, किसी में मन को न फंसावे, तात्पर्य्य यह, कि गीतादि सुन कर, वा स्तुति वाद आदि सुनकर बहुत खुश हो मन को भुलाय नहीं देना और न भयानक चिग्घार तथा निन्दा वाद आदि सुनकर विकल हो जाना, इस प्रत्याहार योग का यही साधन है कि मन सबों से मन को निवृत्त करके अपने वश में रखना, अर्थात् सुनना सब पर मन को एक रस स्थिर रखना॥

सुगन्धोवापिदुर्गन्धो घ्राणेषुजायतेमनः ।
तस्मात् प्रत्याहरेदेतदात्मन्येववशंनयेत् ॥४॥

चाहे सुगन्ध हो, चाहे दुर्गन्ध यदि घ्राण (सूंघने) में आवे और मन बार २ चाहे तो मन को वहां से लौटाकर के अपने वश में करले ॥

मधुराम्लकतिक्तादि रसंगामियदामनः ।
तस्मात्प्रत्याहरेदे दात्मन्येववशंनयेत् ॥५॥

चाहे मधुर (मीठा) हो, चाहे अम्ल (खट्टा) हो, चाहे तिक्त (तीता) हो, चाहे कषाय (बाकस) हो, चाहे कटु (कडुवा) हो, चाहे लवण (लोना) हो, यदि मन इन छः रसों की ओर दौड़े तो उधर से लौटाकर के मनको आत्मा के वश में लाने का अभ्यास करे इसी का नाम प्रत्याहार है ॥

इति श्री घेरण्डसंहितायां घेरण्ड चण्डकपालि संवादे प्रत्याहार प्रयोगोनाम चतुर्थोपदेशः समाप्तः॥४॥

अथ पंचमोपदेशः ।

अथातःसंप्रवक्ष्यामि प्राणायामस्ययद्विधिम् ।
यस्यसाधनमात्रेण देवतुल्योभवेन्नरः ॥१॥

घेरण्ड महाराज चण्डकपालि से कहते हैं कि हम प्रत्याहार कहचुके अब इसके अनन्तर प्राणायाम की जो विधि है उसे कहते हैं जिसके साधन करतेही मनुष्य देवता के समान हो जाता है ॥

आदौस्थानंतथाकालं मिताहारंतथापरम् ।
नाड़ीशुद्धिंचतत्पश्चात्प्राणायामंचसाधयेत् ॥२॥

प्राणायाम साधन करने के पहिले साधन करने का स्थान ठीक करना चाहिये फिर उसी प्रकार समय भी नियत करना चाहिये । फिर उसके बाद मिताहार (एक प्रमाण से सदा भोजन करना) साधन करना चाहिये । फिर उसके बाद नाड़ी शुद्धि करनी चाहिये । ये चार बातें प्राणायाम के साधकों को अवश्य साध लेना चाहिये ॥

स्थान निर्णय ।

दूरदेशेतथारण्ये राजधान्यांजनांतिके ।
योगारम्भनकुर्वीत कृतेत्नसिद्धिदोभवेत् ॥३॥

मनुष्य बस्ती से दूर, तथा बन में भी राजधानी (राजा के रहने की नगरी) में, बहुत जनों के समीप । इन स्थानों में योगारम्भ (प्राणायाम साधन) कभी नहीं करना चाहिये, करे तो सिद्धि कभी न हो ॥

अविश्वासंदूरदेशे अरण्येरक्षिवर्जितम् ।
लोकारण्येप्रकाशश्च तस्मात्त्रीणिविवर्जयेत् ॥४॥

यदि दूर देश में जाकर योग साधन करै तो वहां किसी का विश्वास नहीं कि कौन योगी की ठीक २ रक्षा करैगा । यदि बन में योगाभ्यास करै तो वहां भी कोई रक्षक नहीं मिल सकैगे यदि बहुत से मनुष्यों के बीच योग साधन करै तो सब प्रगट रहैगा जिस्से लोग देखन आया करैंगे और उस्से मन स्थिर नहीं होने पावेगा । इसीलिये ये तीन अवश्य वर्जित हैं । राजधानी को विशेष वर्जित इसलिये की क्रिया को जहां जहां तक बचाय सके बचावे परन्तु यदि राजधानी ही का रहने वाला मनुष्य योगाभ्यास करै तो वह कहां जा सकता है ? क्योंकि उधर दूर देश भी वर्जित कर आये हैं इस राजधानी का मनुष्य यदि योगाभ्यास करै तो राजधानी विशेष वर्जित नहीं है । वर्जित करने का कारण यह है

प्राणायाम साधन करने के पहिले साधन करने का स्थान ठीक करना चाहिये फिर उसी प्रकार समय भी नियत करना चाहिये । फिर उसके बाद मिताहार (एक प्रमाण से सदा भोजन करना) साधन करना चाहिये । फिर उसके बाद नाड़ी शुद्धि करनी चाहिये । ये चार बातें प्राणायाम के साधकों को अवश्य साध लेना चाहिये ॥

स्थान निर्णय ।

दूरदेशेतथारण्ये राजधान्यांजनांतिके ।
योगारंभंनकुर्वीत कृतेन्नसिद्धिदोभवेत् ॥३॥

मनुष्य बस्ती से दूर, तथा बन में भी राजधानी (राजा के रहने की नगरी) में, बहुत जनों के समीप । इन स्थानों में योगारंभ (प्राणायाम साधन) कभी नहीं करना चाहिये, करै तो सिद्धि कभी न हो ॥

अविश्वासंदूरदेशे अरण्येरक्षिवर्जितम् ।
लोकारण्येप्रकाशश्च तस्मात्त्रीणिविवर्जयेत् ॥४॥

यदि दूर देश में जाकर योग साधन करै तो वहां किसी का वि नहीं कि कौन योगी की ठीक २ रक्षा करैगा । यदि बन में योग करै तो वहां भी कोई रक्षक नहीं मिल सकैगे यदि बहुत से म बीच योग साधन करै तो सब प्रगट रहैगा जिस्से लोग देर करैंगे और उस्से मन स्थिर नहीं होने पावेगा । इसीलिये ये ती वर्जित हैं । राजधानी को विशेष वर्जित इसलिये की क्रिया जहां तक बचाव सके बचावे परन्तु यदि राजधानी ही का र मनुष्य योगाभ्यास करै तो वह कहां जा सक्ता है ? क्योंकि तब भी वर्जित कर आये हैं. उस राजधानी का मनुष्य यदि योगा तो राजधानी विशेष वर्जित नहीं है । वर्जित करने का कार

काल निर्णय।

हेमन्तेशिशिरेग्रीष्मे वर्षायांचऋतौतथा।
योगारम्भंनकुर्वंति कृतेयोगोहिरोगदः ॥८॥

हेमन्त ऋतु, शिशिर ऋतु, ग्रीष्म ऋतु और वर्षाऋतु, इनमें योगारम्भ कभी नहीं करना चाहिये, यदि करैं तो वह योग रोग का देने वाला हो जायगा॥

वसन्तेशरदिप्रोक्तं योगारम्भंसमाचरेत्।
तथायोगीभवेत्सिद्धो रोगान्मुक्तोभवेद्ध्रुवम् ॥९॥

वसन्त ऋतु और शरद ऋतु में योगारम्भ करनेको मुनियोंने लिखा है इससे इन्हीं दो ऋतुओं में योगारम्भ करना चाहिये, इनमें करने से योगी सिद्ध हो जाता है और रोगों से भी निश्चय मुक्त हो जाता है॥

चैत्रादिफाल्गुणान्तेच माघादिफाल्गुणान्तिके।
द्वौद्वौमासौऋतुभोगौ अनुभावश्चतुश्चतुः ॥१०॥

चैत्र के महीना से लेकर फाल्गुन के अन्त तक छः ऋतु तथा माघ माघ को आदि करके दूसरे वर्ष के फाल्गुन तक चौदा महीनेके भी छः ऋतु बाधी गई हैं। इस प्रकार दो २ मास की एक २ ऋतु—तथा दो मास और दश दिन की ऋतु अनुभव की जाती हैं॥

वसन्तश्चैत्रवैशाखौ ज्येष्ठाषाढ़श्चग्रीष्मकौ।
वर्षाश्रावणभाद्राभ्यां शरदाश्विनकार्तिकौ ॥११॥

चैत और वैशाख ये दो महीना वसन्त ऋतु कहे जातेहैं, जेठ और आषाढ़ ये ग्रीष्म ऋतु, सावन और भादो ये वर्षा, कुमार और कार्तिक

ये शरद् ऋतु, अगहन और पूस ये हेमन्त, माघ और फागुन ये शिशिर ऋतु कहे जाते हैं ॥

अनुभावंप्रवक्ष्यामि ऋतुनाञ्चयथोदितं ।
माघादिमाघवान्तेषु वसन्तानुभवश्चतुः ॥३२॥
चैत्रादिचापाढान्तञ्च निदाघानुभवश्चतुः ।
आपाढादिचाश्विनान्तः प्रावृषानुभवश्चतुः ॥३३॥
भाद्रादिमार्गशीर्षान्तं शरदोनुभवश्चतुः ।
कार्तिकादिमाघमासान्तं हेमन्तानुभवश्चतुः ॥३४॥
मार्गादिचतुरोमासान् शिशिरानुभवम्बिदुः ।

घेरण्ड जी चण्डकापालि से कहते हैं कि जिन २ महीनों में जो २ ऋतु अनुभव से जानी जाती हैं यानी लक्षणोंसे मिलतीहैं उनको कहते हैं, जैसे:—माघ से वैशाख तक चार महीना वसन्त ऋतु अनुभव होती है, फिर उसी के भीतर और उसके बाहर जैसे चैत से आषाढ़ पर्य्यन्त चार महीना ग्रीष्म ऋतु अनुभव होती है, इसी तरह आषाढसे ले कुआर पर्य्यन्त चार महीना वर्षा ऋतु अनुभव होती है, तथा भादोंसे लेकर अगहन पर्य्यन्त शरद ऋतु का अनुभव होता है, कार्तिक से लेकर माघ तक हेमन्त ऋतुका अनुभव होता है, अगहन से लेकर फागुनतक चारमहीना शीत ऋतु का अनुभव होता है; इसी प्रकार अनुभव की ऋतु जानना चाहिये, और उन्हीं के हिसाब से योगारम्भ करना उचित है ॥

वसन्तेवापिशरदि योगारम्भःसमाचरेत् ।
तदायोगोभवेत्सिद्धो विनायासेनकथ्यते ॥३५॥

वसन्त अथवा शरद ऋतु में योगारम्भ करै तो बिना परिश्रम योग सिद्ध हो जावेगा यह योगियों के द्वारा कहा गया है ॥

मिताहार।

मिताहारंविनायस्तु योगारम्भन्तुकारयेत् ।
नानारोगोभवेत्तस्य किञ्चियोगोनसिद्ध्यति ॥१६॥

जो मनुष्य मित अर्थात् एक तौल बांध कर भोजन नहीं करता और योगारम्भ करता है, वह नाना प्रकार के रोगों से पीड़ित होता है और उसको कुछ भी योग विद्या का लाभ नहीं होता ॥

तात्पर्य्य—भोजन की साधना प्रधान योग है, भोजनही से देह प्रतिपालित होता है और भोजन की गड़बड़ी हुई तो बहुत जल्द मनुष्य मर भी जाता है, इसलिये घेरण्ड महाराज ने भोजन को सम भाव रखने के लिये इस मिताहार का प्रकरण उठाया है, जो शक्त योगाभ्यास किया चाहै वह तो मिताहार का साधना अवश्य करै परन्तु जो बिना योग साधेही अपने शरीर को निरोग रक्खा चाहैं वे भी मिताहार करैं तो पाखण्डी योगियों से शत गुणा उत्तम रहैंगे, कोई शक्त अजमाय के देख ले कि जो एकवर्ष मिताहार करता है उसके कोई व्याधि शरीर में आती है या नहीं हम दृढ़ता से कहते हैं कि मिताहार की बराबर और कोई भी शरीर रक्षा के लिये उपयोगी औषध नहीं है, जिसने मिताहार नहीं किया चाहै कोटि औषध खाय पर तादृश निरोगता नहीं होगी जैसा कि मिताहार से हो सक्ती है इसे आरोग्य चाहनेवाले पुरुष मिताहार अवश्य करैं ॥

शाल्यन्नंयवपिंडंवा गोधूमपिंडकंतथा ।
मुद्गंमाषचणकादि शुभ्रंचतुषवर्जितं ॥१७॥

जो कोई योग साधन किया चाहैं वे शाली (उत्तम धान के) चावल या यव पिष्ट (जव पिसान की रोटी वा सेतुआ) तथा गेहूं की रोटी, और मूंग अथवा नर्द वा चना आदि की दाल, जो खूब साफ और भूसी रहित भोजन करै ॥

पटोलंपनसंमानं कक्कोलंचशुकाशकं ।
द्राढिकांकर्कटींरम्भां डुम्बरींकंटकंटकं ॥१८॥

परवर, कटहर, मान (अरुई की तरह बड़े पत्ते का होता है और उसकी जड़ बड़े की तरह बड़ी लम्बी होती है) कक्कोल (करैला) वैर, करज ककरी, केला, गूलर, कँटीली चौराई आदि का साग, इत्यादि वस्तु खावे ॥

आमरम्भां बालरम्भां रम्भादण्डंच मूलकम् ।
वार्ताकीं मूलकंऋद्धिं योगी भक्षण माचरेत् ॥१९॥

कच्चे केले की तरकारी, केले की वतिया (जो फूलो में लगी हो) केला का दण्ड (बीच का नरम गम्भीका) केला की जड़, भाटा, मूली, इन सब की तरकारी योगी खावे ॥

बाल शाकं काल शाकं तथा पटोल पत्रकम् ।
पञ्चशाकं प्रशंसीयाद्वास्तुकं हिलमोचिकां ॥२०॥

बाल शाक अर्थात् कोमल कोई भी प्रचलित साग हो, काल शाक अर्थात् जिस समय में जो साग हुआ करता हो, पटोल पत्र अर्थात् परवर की पत्ती का साग (यह खाने में कटु होता है परन्तु सब से ज्यादा निरोग होता है और खाते २ अभ्यास पड़ने पर अच्छा भी लगने लगता है) बथुआ का साग और हिंचा साग ये पांच प्रकार के साग योगियों के लिये सराहनीय हैं ॥

शुद्धं सुमधुरं स्निग्धं उदरार्द्धं विवर्जितम् ।
भुज्यते सुरसंप्रीत्या मिताहार मिमंविदुः ॥२१॥

शुद्ध अर्थात् साफ, सुन्दर मधुर (जो खानेमें मिठाय) स्निग्ध (जिसमें रुखाई न हो) सुरस (जिसका रस खराब न लगे) ऐसे भोजन को योगी लोग बड़ी प्रीति से भोजन करैं और वह भोजन आधा पेट खावैं आधा खाली रक्खें । इसी को मिताहार कहते है ॥

तात्पर्य्य—आधा पेट खाने की विधि से बहुत से नए मुक्त योगाभ्यासी लोग यह सोचैंगे कि हम आधापेट खा-कर कैसे बचैंगे ? उनको यह धीरज दिया जाता है कि जब शुद्ध, सुरस और स्निग्ध आदि पदार्थ प्रीति से खावैंगे और सिर्फ आधाही पेट खावैंगे तो यह आसन प्राणायामादिक क्रियाओं से झटपट पचकर प्राण पोषक रस उत्पन्न करैगा, वह रस जब नाड़ियों में दौड़ कर शरीर में व्याप्त हो जावैगा तो थोड़े ही देर के बाद सन्तोष लाभ होगा । फिर ज्यों २ रोज २ इसी प्रकार आधे पेट खाने का अभ्यास बढ़ेगा त्यों २ सन्तोष भी बढ़ता जावैगा और उसका सुख भी बढ़ता जावैगा । यदि अन्न पूरा पेट खाया जाता है तो वह आसन प्राणायाम आदि क्रियाओं के रगड़से आमाशय को कष्ट पहुंचाता है और झटपट आमाशय के नीचे धंस कर अँतड़ियों की राह से मल हो कर निकल जाता है उससे प्राणपोषक रस ऐसा नहीं उत्पन्न होने पाता, बस यही मिताहार का प्रयोजन है कि जो अन्नादि खावै वह उत्तमता से पच जावै, उससे विकार रस पैदा न हो के शरीर को आरोग्य रक्खै ॥

अन्नेन पूरयेदर्द्धं तोये नतु तृतीयकम् ।
उदरस्य तुरीयांशं संरक्षेद्वायु चारणे ॥२२॥

पेट का आधा भाग अन्न के भोजन से पूरा करना चाहिये, तीसरा

भाग जल पीकर पूरण करना चाहिये, इसी प्रकार उदर का चौथा भाग वायु चलाने फिराने के लिये छोड़ रखना चाहिये ॥

कट्वम्ल लवणांतिक्तं भृष्टञ्च दधितक्रकम् ।
शाकोत्कटं तथा मद्यं तालञ्च पनसन्तथा ॥२३॥
कुलत्थं मसरं पाण्डुं, कुष्मांडं शाकदण्डकम् ।
तुम्बीकोल कापित्थञ्च, कंटाविल्वंपलाशकम् ॥२४॥
कदम्बं जम्बीरं विम्बं लकूषं लशुनं विषम् ।
कामरङ्गं पियालञ्च हिङ्गुशाल्मलिके मुकम् ॥
योगारम्भे वर्जयेत पथस्त्री वन्हि सेवनम् ॥२५॥

कटु (कड़ू) अम्ल (खटाई) लवण (नोनखरा, नमकीन) तिक्त (तीता) ये चार प्रकार के रस युक्त पदार्थ योगारम्भ में छोड़ देना चाहिये, भृष्ट (भूंजा चबैना) दही, मट्ठा, घृणित या खराब शाग, मदिरा, ताड़ फल तथा उसका रस, पक्का कटहर, कुलत्थ (कुरथी की दाल) मसूर की दाल, पढ़ोरा नामक फल, कुम्हड़ा, मथी डांठे या अरुई आदि के पुत्ते, लौकी, बैर, कैथा, जिस बेल में कांटा हों, पलाश, कदम्ब के फल, जम्बीरीनींबू, कुंदुरू, लकूच (लहसुन) मृणाल (कमल की डंठी) कमरख, प्याज हींग, सेमर के फल, केमुक (गोभी) योगारम्भ काल में ये भी सब द्रव्य भोजन में वर्जित है, इसी प्रकार पथ का चलना, स्त्री प्रसङ्ग तथा आग का तापना आदि भी वर्जित हैं ॥

तात्पर्य्य यह है कि जब योगाभ्यास की क्रिया आरम्भ की जायगी तब शरीर को ये सब वस्तुये रोग प्राप्त कर देंगी परन्तु जब योगाभ्यास की सामर्थ हो जायगी योगी सिद्ध हो जायगा तब तो कोई भी वस्तु भोजन पान करे उसको विकार नहीं करेंगी, बल्कि प्रत्येक वस्तु के साथ

तात्पर्य—यहां पर एक शंका यह होती है कि २६ श्लोक में नैनू घी दूध इन पदार्थों का निषेध किया है कि योगारंभ में न खावे और यहां पर घी दूध रोज २ पहिले सेवन करके तब प्राणायाम करै। यह कैसे सङ्गत हो सक्ता है ?

यहां पर विवेचना करना चाहिये कि वहां २६ श्लोक में योगारंभ के समय घी दूध को निषेध किया है, कुछ साधन हो जाने पर निषेध नहीं किया। परंतु यहा जो घी दूध की विधि है वह इस तात्पर्य से है कि जब साधन करते २ कुछ प्राणायाम की शक्ति जम जावे तब उसी के साथ २ घी दूध के सेवन का भी क्रम से अभ्यास करै परन्तु कम से कम आरंभ से एक पक्ष यानी चन्द्रमा की जब तक दूसरी प्रकृति न आवे तब तक उसी प्रकार जैसे कि २६ श्लोक में लिखा है साधन करै, बाद जब १ पक्ष बीत जावे तब फिर क्रम से घी दूध सेवन करै, और वहीं तक बढ़ावे जहां तक कि अजीर्ण न हो। बस पूर्व निषेध और विधि संगत हो गये। इसी प्रकार जहां २ विधि निषेध पाये जावें वहां २ समय पात्र और स्थान भेद से संगत करलेना चाहिये, क्योंकि समय एकसा सदा नहीं रहता, तथा पात्र भी सब एकसे नहीं होते, इसी तरह स्थान भी सब एक समान नहीं रहते, विवेचना से काम करना भी योग शास्त्र का एक प्रधान अङ्ग है। यदि विवेचना से चूका तो सब योग नष्ट हो जाता है, इससे विवेचना को खूब साधना चाहिये॥

विचार करो कि पहिले प्रत्याहार प्रकरणमें लिखआये हैं कि भोग्य वस्तुओं से मन को निवृत्त करना चाहिये, परन्तु यह भी लिखा है कि अमुक २ वस्तु योगी लोग अवश्य भोजन करें, तो यहां पर यह विवेचना करनी जरूर है कि मन की निवृत्तिही प्रधान है क्योंकि जहां कहीं दैव संयोग से आवश्यकीय वस्तु न मिलें वहां सब किया कराया नष्ट भया कि नहीं ? इन्हीं स्थलों में प्रत्याहार काम में आते हैं कि आवश्यकीय

काठिन्यं दुरितं पूतिमुष्णं पर्य्युषितं तथा ।
अतिशीतंचातिचोग्रं भक्ष्यं योगी विवर्जयेत् ॥२९॥

जो द्रव्य कठिनता युक्त हो, जिसके भोजन से पाप उत्पन्न हो, सड़ पच के दुर्गन्ध युक्त हुये हों, अधिक गरम हो, वा अधिक ठंढा हो, बासी हो, अति उग्र (अधिक तेजी लिये हो) ऐसे पदार्थों को योगी लोग कभी भोजन न करें ॥

प्रातःस्नानोपवासादि कायक्लेश विधिं विना ।
एकाहारं निराहारं, यामान्ते च नकारयेत् ॥३०॥

जब योगारम्भ करे तब प्रातःस्नान नहीं करना चाहिये । उपवासादि शरीर के क्लेश देने वाले कर्म नहीं करने चाहिये । एक ही बार भोजन करना यह भी नहीं करना चाहिये, वा कुछ नहीं खाना यह भी नहीं करना चाहिये, और एक प्रहर तक निराहार रहना अधिक नहीं, तात्पर्य्य यह कि पूर्वोक्त उत्तम पदार्थों में से कुछ थोड़ा अवश्य एक २ प्रहर बाद खा लिया करे ॥

एवंविधि विधानेन प्राणायामं समाचरेत् ।
आरंभे प्रथमेकुर्यात् क्षीराज्यं नित्य भोजनम् ॥३१॥
मध्याह्नेचैव सायान्हे भोजनद्वय माचरेत् ॥

इसी प्रकार की विधि से प्राणायाम साधन करना चाहिये । प्राणायाम करने के पहिले रोज २ दूध और घी सेवन करना चाहिये । और मध्यान्ह (दुपहरी) में तथा सायंकाल में इन्हीं दो समयों में योगी लोग भोजन करें ॥

तात्पर्य–यहां पर एक शंका यह होती है कि २६ श्लोक में तैल घी दूध इन पदार्थों का निषेध किया है कि योगारंभ में न खावे और यहां पर घी दूध रोज २ पहिले सेवन करके तब प्राणायाम करे। यह कैसे सङ्गत हो सक्ता है ?

यहां पर विवेचना करना चाहिये कि वहां २६ श्लोक में योगारंभ के समय घी दूध को निषेध किया है, कुछ साधन हो जाने पर निषेध नहीं किया। परंतु यहां जो घी दूध की विधि है वह इस तात्पर्य से है कि जब साधन करते २ कुछ प्राणायाम की शक्ति जम जावे तब उसी के साथ २ घी दूध के सेवन का भी क्रम से अभ्यास करे परन्तु क्रम से क्रम आरंभ से एक पक्ष यानी चन्द्रमा की जब तक दूसरी प्रकृति न आवे तब तक उसी प्रकार जैसे कि २६ श्लोक में लिखा है साधन करे, बाद जब १ पक्ष बीत जावे तब फिर क्रम से घी दूध सेवन करे, और वहीं तक बढ़ावे जहां तक कि अजीर्ण न हो। बस पूर्व निषेध और विधि संगत हो गये। इसी प्रकार जहां २ विधि निषेध पाये जावें वहां २ समय पात्र और स्थान भेद से संगत करलेना चाहिये, क्योंकि समय एकसा सदा नहीं रहता, तथा पात्र भी सब एकसे नहीं होते, इसी तरह स्थान भी सब एक समान नहीं रहते, विवेचना से काम करना भी योग शास्त्र का एक प्रधान अङ्ग है। यदि विवेचना से चूका तो सब योग नष्ट हो जाता है, इससे विवेचना को खूब साधना चाहिये॥

विचार करो कि पहिले प्रत्याहार प्रकरणमें लिखआये हैं कि भोग्य वस्तुओं से मन को निवृत्त करना चाहिये, परन्तु यह भी लिखा है कि अमुक २ वस्तु योगी लोग अवश्य भोजन करें, तो यहां पर यह विवेचना करनी जरूर है कि मन की निवृत्तिही प्रधान है क्योंकि जहां कहीं दैव संयोग से आवश्यकीय वस्तु न मिली वहां सब किया कराया नष्ट भया कि नहीं ? इन्हीं स्थलों में प्रत्याहार काम में आते हैं कि आवश्यकीय

वस्तु न मिलने पर भी जो कार्य विधेय हैं वे कर लिये जावें, उनके स्थान में योगी लोग अपनी शक्ति से दूसरे उपस्थित पदार्थों को युक्त कर लें और वही गुण उत्पन्न करलें । कैसे ? भावना से, भावना दृढ़ होने से जैसे भृङ्गी दूसरे कीड़े को अपना स्वरूप बनाय लेती है वैसेही योगी लोग भी एक वस्तु के स्थान में दूसरी वस्तु का गुण उत्पन्न करलेते हैं। यदि यह न हुआ तो योग की क्रिया ध्यान धारणा सब झूंठी है । सो नहीं यह बहुत काल से भारतवर्ष में निश्चय है कि ध्यान से ध्येय वस्तु खिंच आती है, जैसे कि फोटो में दूरस्थ वस्तु के अवयव खिंच जाते हैं, आजकल के योरोप वासी विद्वानी लोग भी इस योग विद्या की तारीफ इसी शक्ति के प्रभाव से करते हैं, इससे सब से उत्तम शक्ति का बढ़ाना ही विधि निषेध का कार्य्य है ।

अथ नाड़ीशुद्धि ।

कुशासनेमृगाजिने व्याघ्राजिनेचकम्बले ।
स्थूलासनेसमासीनः प्राङ्मुखोवाप्युदङ्मुखः ॥
नाड़ीशुद्धिंसमासाद्य प्राणायामंसमभ्यसेत् ॥३२॥

अब प्राणायाम साधन करने लगै तब पहिले नाड़ी शुद्धि करले तो ठीक होगा नहीं कभी ठीक नहीं होगा, सो उसका विधान यह है कि प्रथम कुशा के आसन में, या मृगछाला पर, या बाघम्बर पर अथवा कम्बल पर बैठे, यह कोई आसन हो मोटा हो यानी गुलगुल हो पूर्व मुख होके बैठे या उत्तर मुख होके ।

नाड़ीशुद्धिंकथंकुर्यां न्नाड़ीशुद्धिस्तुकीदृशी । ?
तत्सर्वंश्रोतुमिच्छामि तद्वदस्वदयानिधे ! ॥३३॥

चण्डकपालि कहते भये कि हे दयानिधि ! नाड़ी शुद्धि किस प्रकार

करनी चाहिये और नाड़ी शुद्धि किस तरह की है यह सब हमसे कहो हमारी इच्छा इसके सुनने की बहुत ही हुई है ॥

मालाकुला सुनाड़ीषु मारुतो नैवगच्छति ।
प्राणायामः कथंसिध्येत्तत्वज्ञानं कथंभवेत् ॥
तस्मादादौनाड़ीशुद्धिं प्राणायाम ततोभ्यसेत् ॥३४॥

घेरण्ड महाराज ने कहा कि माला की भांति गुथीं हुई नाडियों के भीतर वायु अच्छीतरह पैठ के गमनागमन नहीं कर सकता, इससे प्राणायाम कैसे सिद्ध हो सकता है ? और तत्वज्ञान भी कैसे प्राप्त होसकता है ? इसी कारण पहिले नाड़ी शुद्धि करके तब प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये ॥

नाडी शुद्धिर्द्विधा प्रोक्ता समनुर्निर्मनुस्तथा ।
बीजेनसमनु कुर्यान्निर्मनुं धौत कर्मणा ॥३५॥

नाड़ी शुद्धि दो प्रकार से होती है, १ समनु, २ निर्मनु, इनमें बीज मन्त्र के द्वारा जो नाड़ी शुद्ध की जावे उसको समनु तथा धौति कर्म के द्वारा जो नाडी शुद्ध की जावे उसको निर्मनु नाड़ी शुद्धि कहते हैं ॥

धौतकर्म पुराप्रोक्तं षट् कर्म साधने यथा ।
शृणुष्वसमनुंचण्ड ! नाड़ीशुद्धिर्यथाभवेत् ॥३६॥

हे चण्डकापालि ! षटकर्म साधन के समय में पहिले ही धौतिकर्म कह आये हैं, अब जिस प्रकार "समनु" नाड़ी शुद्धि है उसको कहते हैं तुम सुनो ॥

उपविश्यासने योगी पद्मासनं समाचरेत्।
गुर्वादि न्यासनं कुर्याद्यथैव गुरुभाषितम्॥
नाड़ीशुद्धिं प्रकुर्वीत प्राणायामविशुद्धये॥३७॥

प्रथम योगी पद्मासन बांध कर आसन पर बैठे, फिर गुरू आदि न्यास करे उसी के अनन्तर जैसे गुरू ने सिखाया है उसी के अनुसार प्राणायाम साधन के लिये नाड़ी शुद्धि करे॥

वायुबीजं ततो ध्यात्वा, धूम्रवर्णं सतेजसम्।
चन्द्रेण पूरयेद्वायुं बीजं षोडशकैः सुधीः॥३८॥
चतुःषष्ट्या मात्रया च, कुम्भके नैवधारयेत्।
द्वात्रिंशन्मात्रया वायुं सूर्यनाड्याच रेचयेत्॥३९॥

आसन, गुरुन्यास के उपरान्त वायु बीज (य, यह वायु बीज है) का ध्यान धूम्र वर्ण और तेजके सहित करे, फिर बुद्धिमान साधक उसी वायु बीज को षोडश (१६) मात्रा अर्थात् सोलह वार जप करते हुये नाक के बाएं छेद से वायु को पूरण करे फिर चौंसठ मात्रा की सख्यासे कुम्भक प्राणायाम (दोनो नाक के छेद और मुह बन्द किये) धारण करे, इसी प्रकार बत्तीस मात्रा बायु वीज का जप करते हुये नाक के दहिने छेदको छोड़ कर रेचक (वायु को निकालना) प्राणायाम करे॥

नाभिमूलाद्वन्हिमुत्थाप्य ध्यायेत्तेजोवनीयुतम्।
वन्हिबीजं षोड़शेन सूर्यनाड्याच पूरयेत्॥४०॥
चतुःषष्ट्याच मात्रया कुम्भकेनैव धारयेत्।
द्वात्रिंशन्मात्रयावायु शशिनाड्याच रेचयेत्॥४१॥

नाभि मूल अग्नि तत्व का स्थान है। योग के प्रभाव से उसी नाभी के मूल से अग्नि तत्व को प्रगट कर उठावे और पृथिवी तत्व को उसी अग्नि तत्व में संयुक्त करते हुये ध्यान करै। अनन्तर सोलह मात्रा अग्नि बीज (र यह अग्नि बीज है) का जप करते २ नाक के दहिने छेद से वायु पूरण करे। इसी प्रकार चौसठमात्रा (र) जपते हुये कुम्भक प्राणायाम करें (सब द्वार मूंदे वायु धारण किये रहै) फिर बत्तीस मात्रा (र) जपते २ नाक के बाएं छेद से वायु को त्याग करें॥

नासाग्रेशशधृग्बिंबं ध्यात्वाज्योत्स्नासमन्वितम्।
ठं, बीजषोड़शेनैव इंडयापूरयेन्मरुत् ॥४२॥
चतुष्पष्ठ्यामात्रयाच 'व' बीजंनैवधारयेत्।
अमृतंप्लावितंध्यात्वा नाड़ीधौतंविभावयेत्॥
लकारेणद्वात्रिंशेन दृढभाव्यंविरेचयेत् ॥४३॥

इसके बाद नासिका के अग्र भाग में, किरणों के सहित चन्द्र बिम्ब का ध्यान करते हुये (ठं) यह बीज सोलह मात्रा जप करते २ नाक के बाएं छेद से वायु पूरण करै, फिर जल बीज (व) इसको चौसठ मात्रा जपते हुये सुषुम्ना नाड़ी में (भीतर हृदय की नाडी) कुम्भक योग से वायु धारण करै, बाद ऐसा ध्यान करै मानो नाक के अग्रभाग स्थित चन्द्रबिंब से अमृत की धारा बह रही है उसी के द्वारा शरीर की जितनी नाड़ी हैं सब धोई जा रही है, इसीप्रकार ध्यान करते २ पृथिवी बीज (ल इस को बत्तीस बार जप करते हुये नाक के दहिने छेद से वायु को रेचन (त्याग) करै॥

एवंविधांनाड़ीशुद्धिं कृत्वानाड़ींविशोधयेत्।
दृढ़ीभूत्वासनंकृत्वा प्राणायामंसमाचरेत् ॥४४॥

इसी प्रकार नेत्री शुद्धि कर्म के द्वारा नाड़ियों को शुद्ध करके दृढ़ भाव हो आसन में बैठ कर प्राणायाम का अभ्यास करै ॥

सहितःसूर्यभेदश्च उज्जायीशीतलीतथा ।
भस्त्रिकाभ्रामरीमूर्छा केवलीचाष्टकुंभिकाः ॥४५॥

कुम्भक प्राणायाम आठ प्रकार का है, जैसे—१ सहि, २ सूर्यभेद, ३ उज्जायी, ४ शीतली, ५ भस्त्रिका, ६ भ्रामरी, ७ मूर्छा, एवं ८ केवली ॥

सहितोद्विविधःप्रोक्तः प्राणायामंसमाचरेत् ।
सगर्भोवीर्य्यमुच्चार्य्य निर्गर्भोवीजवर्जितः ॥४६॥

सहित नामक कुम्भक प्राणायाम दो प्रकार है, १ सगर्भ, तथा २ निगर्भ, जिस कुम्भक में बीजमन्त्र उच्चारण करके साधना की जावे उसको सगर्भ कहते हैं और जिसमें बीजमन्त्र वर्जित रहै उसको निगर्भ करते हैं।

प्राणायामंसगर्भंच प्रथमंकथयामिते ।
सुखासनेचोपविश्य प्राङ्मुखोवाप्युदङ्मुखः ॥
ध्यायेद्विधिंरजोगुणयं रक्तवर्णमवर्णकम् ॥४७॥

घेरंड जी ने चण्डकापालि से कहा कि सगर्भ प्राणायाम किस प्रकार साधन करना चाहिये उसको पहिले तुमसे कहते हैं। वह यह है कि—सुखासन (आराम के आसन) पर पूर्व मुख या उत्तर मुख हो के बैठे और ब्रह्मा को ऐसा ध्यान करै मानों यह रक्त वर्ण है और अकार स्वर वर्ण के रूप है। तथा रजो गुण विशिष्ट है ॥

इंडयापूरयेद्वायुं मात्रयाषोडशैःसुधाः ।
पूरकांतेकुम्भकाद्ये कर्त्तव्यस्तूड्डीयानकः ॥४८॥

ध्यान के अनन्तर बुद्धिमान साधक, (अ) यह बीज मंत्र सोलह बार अथवा कुम्भक के आगे और पूरक के अन्त में प्रथम उड्डीयानबन्ध जो पीछे कह आये हैं आचरण करना चाहिये ॥ अथवा बुभा नाक के बाए छेद से वायु पूरण करे। उसी समय कुम्भक के

सत्वमयं हरिंध्यात्वा उकारं कृष्णवर्णकम्।
चतुःषष्ट्याच मात्रया कुम्भके नैव धारयेत् ॥४९॥

उसके अनन्तर सत्व गुण संयुक्त उकार स्वरूपी, कृष्णवर्ण विष्णु का ध्यान करता हुआ (उं) इस बीज को चौसठ मात्रा जप द्वारा कुम्भक प्राणायाम में वायु धारण करे ॥

तमोमयं शिवंध्यात्वा मकारं शुक्लवर्णकम्।
द्वात्रिंशन्मात्रया चैव रेचयेद्विधिना पुनः ॥५०॥

फिर उसके अनन्तर तमोगुण युक्त मकार व्यञ्जनरूपी श्वेतवर्ण शिव का ध्यान करता हुआ (म) बीज से बत्तीस मात्रा जप के द्वारा उस पूरित वायु को नाक के दहिने छेद से रेचन करे ॥

पुनःपिंगलयापूर्य कुम्भकेनैव धारयेत्।
इडया रेचयेत्पश्चात्तद्बीजेन क्रमेणतु ॥ ५१ ॥

उसके अन्तर फिर भी उसी प्रकारसे उल्लिखित समस्त बीजोंको यथा सख्यक (जैसी सख्या कह आये हैं) जप के द्वारा दहिनी नासिका के छेद से वायु पूरण कर कुम्भक योग से उसी प्रकार धारण करके बाद फिर भी वाम नासा छिद्र से रेचन करे ॥

अनुलोम विलोमेन वारंवारं च साधयेत्।
पूरकान्ते कुम्भकान्तं धृतनासा पुटद्वयम् ॥
कनिष्ठानामिकांगुष्ठैः तर्जनीमध्यमांविना ॥५२॥

इसी प्रकार पुनः २ अनुलोम विलोम (बांएं से खींचे दहिनेसे छोड़े और दहिने से खींचे बांएं से छोड़े) के द्वारा प्राणायाम साधन करै। वायु पूरण के शेष से लेकर कुम्भक के शेष पर्यन्त तर्जनी और मध्यमा को छोड़ कर कनिष्ठा, अनामिका और अंगुष्ठ ये तीन अङ्गुलियोंके द्वारा नासापुट धरना चाहिये। अर्थात् जिस समय पूरक प्राणायाम से वायु खींचे उस समय दहिने नासा के छेद को अँगूठे से दाबे रहै और बाएं छेद से खींचे। जब कुम्भक प्राणायाम से वायु को रोके तब नाक के बांएं छेद को कनिष्ठा और तर्जनी इन दो अङ्गुलियों से दाबै और इधर अँगूठे को भी दाबे रहै और मुख भी बन्द रक्खै। और जब दहिने छेद से वायु खींचे तो पहिले बांएं छेद को कनिष्ठा और अनामिका से दाबे रहै और कुंभक में अँगूठा भी दहिने छेद में दबावै॥

प्राणायामं निर्गर्भं विना बीजेन जायते।
एकादि शतपर्यन्तं पूर कुम्भक रेचनम् ॥५३॥

निर्गर्भ प्राणायाम की दूसरी विधि कह आये हैं यह बिना बीज मन्त्र ही किया जाता है, पूरक, कुम्भक, रेचक ये तीन प्राणायाम अङ्ग सहित साधन करने में एक से लेकर सौ पर्यन्त मात्रा हैं॥

उत्तमा विंशतिर्मात्रा षोड़शीमात्रामध्यमा।
अधमाद्वादशीमात्रा प्राणायामास्त्रिधास्मृताः ॥५४॥

मात्राके अनुसार प्राणायाम तीन प्रकारकी है, जिसमें बीस मात्रा की स्थिति है वह उत्तम, जिसमें सोलह मात्रा वह मध्यम, जिसमें बारह मात्रा स्थिति है वह अधम है॥

अधमाज्जायते घर्म मेरुकं पञ्च मध्यमात्।
उत्तमाच्च भूमित्यागस्त्रिविधं सिद्धिलक्षणम् ॥५५॥

अधम मात्रावाली प्राणायाम साधन करने से देह में पसीना आता है, मध्यम मात्रा की प्राणायाम में मेरु (पीठ से कमर तक) कांपने लगता है, अर्थात् एक नाड़ी गुदा से लेकर मस्तक पर्यन्त दण्डाकार है वही वायु भरने पर कांपने लगती है, उत्तम मात्रा की प्राणायाम से देह भूमि से उठ के शून्य में चलीजाती है. तीन प्रकार प्राणायाम की सिद्धि के ऐसे तीन चिन्ह हैं कि पसीना आवे, देह कांपे, और देह आकाश में उठ जावे, इन चिन्हों के बिना प्राणायाम में सिद्धि प्राप्त नहीं हुई यही जानना चाहिये॥

विवेचना—प्राणायाम में जो बीस, सोलह, बारह, ये तीन संख्या बांधी गई हैं उनका तात्पर्य यह है कि जैसे २० बीज में सोलह पूरक चौंसठ कुम्भक, बत्तीस रेचक हैं, इसी प्रकार बीस मात्रा वाली में बीस पूरक, अस्सी रेचक, चालीस के हिसाब से उत्तम जानना चाहिये, इसी प्रकार सोलह पूरक चौंसठ कुम्भ, बत्तीस रेचक के हिसाब से मध्यम, तथा बारह पूरक अड़तालीस कुम्भक और चौबीस रेचक से अधम जाननी चाहिये॥

प्राणायामात्खेचरत्वं प्राणायामाद्रोगनाशनम्।
प्राणायामाद्बोधयेच्छक्तिं प्राणायामान्मनोन्मनी॥
आनंदोजायतेचित्ते प्राणायामीसुखीभवेत्॥५६॥

प्राणायाम साधन करने से खेचरत्व शक्ति (आकाश में उड़ने की ताकत) होती है, प्राणायाम से रोग नष्ट होते हैं, प्राणायाम से परम शक्ति जाग उठती है, तथा प्राणायाम से दिव्य ज्ञान लाभ होता है अर्थात् एक नवीन बुद्धि उत्पन्न होती है, फिर प्राणायाम से चित्त में आपही आप आनन्द प्राप्त होता है. और प्राणायाम साधन करनेवाला पुरुष इस प्रकार सुखी हो जाता है॥

तात्पर्य—नाड़ियों में जो वायु भरा रहता है वह बिना परिचालन क्रिया के गुम्म साधे एक रस बना रहता है जब कोई और दूसरे प्रकार का वायु उसके भीतर जा पैठा और उस वायु में मिलगया तो झट पट नाना विकार उत्पन्न करके रोग राशि प्रगट करता है, विशेष कर वायु के विकार अधिक उत्पन्न होते हैं । परन्तु प्राणायाम से नया वायु नाड़ियों में पैठता है, पुराना गुम्म सधा हुआ वायु निकलता रहता है इससे विकारी भी वायु अर्थात् विकारी वस्तु से उपजा भी वायु शरीर में आकर नाड़ियों में पैठ रक्त में मिल कर भी अपना असर नहीं पहुंचा सका क्योंकि नाड़िया व्यायाम (कसरत) से मँजी रहती है, पुष्ट हो जाती हैं, उनके भीतर विकार निर्विकार बराबार गुण करता है । इसी निमित्त योगी लोग दीर्घायु और सुखी रहते हैं ॥

अथ सूर्यभेद कुम्भक ।

कथितं सहितं कुंभं सूर्यभेदनकंशृणु ।
पूरयेत्सूर्यनाड्या च यथाशक्तिर्वहिर्मरुत् ॥५७॥
धारयेद्बहुयत्नेन कुम्भकेन जलंधरैः ।
यावत्स्वेदोनखकेशाभ्यां तावत्कुर्वंतुकुम्भकम् ॥५८॥

घेरण्ड महाराज ने चण्डकपालि से कहा कि, सहित नामक भेद से जो पहिला कुंभक कहा था उसका विवरण तो कह चाये अब सूर्य भेद नामक जो दूसरा कुम्भक है उसका विवरण सुनो । पहिले जालधर बंध नामक मुद्रा धारण करके नाक के दहिने छेद से जितनी शक्ति हो वायु खींच कर धारण करें । फिर बड़े यत्न के सहित उपरोक्त कुम्भक योग से रोके रहे, जब तक नख और बालों से पसीना न आवे तब तक स्थिर रक्खे ॥

प्राणोपानः समानश्चोदानव्यानौ तथैवच।
नागः कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः ॥५९॥

प्राण अपान, समान, व्यान, उदान, ये पांच प्रकार के वायु, शरीर के भीतर रहते हैं। तथा नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त, धनञ्जय, ये पांच प्रकार के वायु शरीर के बाहर भाग में रहते हैं॥

हृदिप्राणो वहेन्नित्यं अपानो गुदमण्डले।
समानो नाभिदेशेतु उदानः कण्ठ मध्यमः ॥६०॥
व्यानोव्याप्य शरीरेतु, प्रधानाः पञ्च वायवः।
प्राणाद्याःपञ्चविख्याता नागाद्याःपञ्चवायवः॥६१॥

प्राण नामक वायु हृदय में, अपान गुदा देश में, समान नाभी में उदान कण्ठ में, इसी प्रकार व्यान नामक वायु समस्त शरीर में व्याप्त हो कर चलता रहता है। ये प्रधान पांच प्रकार के वायु हैं। तथा नाग, कूर्म कृकर, देवदत्त, धनञ्जय, ये पांच बाहर वाले वायु अप्रधान हैं॥

तेषामपिच पञ्चानां स्थानान्यपि वदाम्यहं।
उद्गारेनाग आख्यातः कूर्मस्तून्मीलनेस्मृतः॥६२॥
कृकरः क्षुत्कृते ज्ञेयो देवदत्तो विजृम्भणे। .
नजहाति मृतञ्चापि सर्वव्यापी धनञ्जयः ॥६३॥

ये पांच प्रकार के वायु जिस जिस स्थान में प्रवाहित होते हैं वह हम कहते हैं सुनो, नाग नामक जो वायु है वह डकार लेने में आता है, कूर्म नामक वायु आंख मूदने खोलने में अर्थात् पलक मारनेमें कृकर नामक वायु छींक में या हिचकी में देवदत्त नामक वायु जमुहाने में

रहता है, और धनञ्जय नामक वायु मरण होनेपर भी मृतक देह (लाश) में भी जो बना रहता है, जिसके द्वारा लाश का फूलना पचकना आदि बहुत से वायु के कार्य देख पड़ते हैं ॥

नागोगृह्णाति चैतन्यं, कूर्मश्चैव निमेषणम् ।
क्षुत्कृत् कृकरश्चैव जृम्भणं चतुर्थेनतु ॥
भवेद्धनञ्जयाच्छब्दं क्षणमात्रं न निःसरेत् ॥६४॥

पांच प्रकारके जो नाग वायुहैं उनसे पांच प्रकारके शारीरक कार्य्य होते हैं जैसेः—नाग नामक वायु जो हिकार में रहता है वह चैतन्यता ग्रहण करता है अर्थात् भोजन किया हुआ अन्न आमाशय में पहुंच कर जब तक ठीक अपने परिपाक के स्थान पर नहीं पहुंचता तब तक एक प्रकार का नशा उत्पन्न किये रहता है जिस्से कुछ मानसिक स्वाभाविक चित्त विकृति रहती है, परन्तु जब डकार आती है तब वह आमाशयस्थ अन्न अपने परिपक्व स्थानपर पहुंच कर आराम देता है और फिर मानसिक कार्य्य उत्तमता से हो सकते हैं, इसी निमित्त डकार के वायु का गुण चैतन्यता सम्पादक कहा जाता है ॥

कूर्म नामक वायु जो पलक भांजने में रहता है वह पलक भांजनेमें जो आंखों को आराम मिलता है वह ऐसे कार्य्य को सम्पादन करता है, नेत्रों में एक प्रकार का रस रहता है जिस्से नेत्र सदा तर रहते हैं और इस तरावट के गुण से किसी प्रकार का मल उस नेत्रकी पुतली पर नहीं टिक सकता, यदि नेत्र में तरावट न रहे तो रुखाईके कारण उसपर बाहर की उड़ी धूल आदि से पुतली मलीन हो जाये और कुछ भी न देख पड़े, परन्तु कूर्म नामक वायु के प्रभाव से पलक दबा करती है तो नेत्र नाड़ी से रस आया करता है इससे तरावट नहीं जा सकी और गर्द आदि भी पुतली के ऊपर ठहर नहीं सका । योग शास्त्र में इनको भी

पुष्टता मुद्रादि के द्वारा हो सकती है कि पलक न झपकानेसे नेत्रमें अधिक स्थिरता प्राप्त हो जैसे शांभवी मुद्रा आदि में कह आये हैं, परन्तु विना मुद्रा के कुछ नेत्र की रक्षा है यह इसी कूर्म वायु का गुण है ॥

कृकर नामक वायु क्षुधा और तृष्णा उत्पन्न करता है, अर्थात् छींक आने से एक प्रकार का वायु बाहर से आकर बड़े वेग से निकलता है इससे आमाशयका स्थित पचा हुआ अन्न जल बहुतही शीघ्र नीचे अँतड़ियों में पहुँच जाताहै और आमाशय का भाग खाली हो जाता है और उससे आमाशय पूर्ण होने के लिये नाड़ियां उद्यत होती हैं वही क्षुधा तृष्णा कही जाती है, अन्न की कमी से क्षुधा और जल की कमीसे तृष्णा होती है, ये कार्य्य इसी कृकर नामक वायु के द्वारा सम्पादित होते हैं ॥

देवदत्त नामक वायु से जंभुआई के कार्य्य हुआ करते हैं अर्थात् जब शरीर में वायु की गति शिथिल हो जाती है तब एक प्रकार का आलस्य आजाता है उस आलस से मानसिक वृत्ति भी शिथिल हो जातीहै, तब उस शिथिल वायु की गति को सबल करने के लिये बाहर से इस देवदत्त नामक वायु को जंभुआई के आकर्षण किया जाता है और फिर चैन के द्वारा आता है उससे जब तक जागते रहो सोयो नहीं तब तक आराम मिलता रहता है, परन्तु प्राणायाम से इसकी भी आवश्यकता नहीं रहती यह भी अभ्यास से हो सकता है ॥

धनञ्जय वायु जो सदा शरीर में रहता है किसी समय अलग नहीं हो सकता उससे शब्द का कार्य्य हुआ करता है, अर्थात् यही शब्द के शब्द उत्पन्न करता है, शब्द उत्पन्न होने के कारण दो द्रव्यका वेगसे संयोग और वियोग है, यह संयोग और वियोग जैसे अकारादि स्वर और ककारादि व्यंजन में तथा करतालों आदि में प्रगट है, पहिले हृदय से वायु को उठा कर वेग से कंठ नली में जब धक्का लगता है तब अकार स्वर, इकार स्वर और उकार स्वर क्रम से विस्तार सङ्कोच और अति

संकोच भाव से प्रगट होते हैं, इससे स्वरों को विवृत प्रयत्न के वर्ण कहे हैं, इसी प्रकार पहिले कंठ नली के सर ऊपर भाग का संयोग करके पीछे वेग से वियोग करने पर कवर्ग वाले वर्ण प्रगट होते हैं, इसी से उनको स्पर्श कहते हैं, दोनों हाथों को वेग से एक २ के साथ संयोग करने से ताली बजती है, इत्यादि कार्य्य जितने होते हैं ये सब धनञ्जय नामक वायु के हैं, मुख्य बात यह है कि वायु एक ही है परन्तु कार्य्य भेदसे अपने २ स्थान पर पृथक् २ नाम धारण किये हैं ॥

सर्वेते सूर्य्यभिन्ना नाभिमूलात्समुद्धरेत् ।
ईड़या रेचयेत्पश्चाद्धैर्य्येणाखण्डवेगतः ॥६५॥
पुनःसूर्य्येणचाकृष्य कुम्भयित्वा यथा विधि ।
रेचयित्वा साधयेत्तु क्रमेण च पुनः पुनः ॥६६॥

पहिले ५७–५८ श्लोक में कह आये हैं कि सूर्य्यकी नाड़ी (नाक के दहिने छेद) से बाहर की वायु को यथा शक्ति खींच के जालंधर बंध के सहित कुंभक में धारण करै सो इस कुंभक के समय कथित १० प्रकार के प्राणादि समस्त वायु के भेदों को, सूर्य्य नाड़ी (नाक के दहिने छेद) से अलग २ करके खींचे हुयों को, धारण करै जैसा कि पहिले कह आये हैं कि जब तक नख और बालों में पसीना न आवे थामे रहै और ऊपर नाभी मूल से समान नामक वायु को उठावे, उसके अनन्तर धीरता के साथ बड़े वेग से (बीच में रुके नहीं) नाक के बाएं छेद से रेचन करै । इसी प्रकार फिर भी उसी सूर्य्य नाड़ी (दहिने छेद) से आकर्षण करके कुम्भक करै और जैसे कह आये हैं वैसाही रेचन करै । इसी प्रकार बार बार क्रम से साधे । इसी को सूर्य्य भेद कुम्भक कहते हैं ॥

सूर्यभेद कुम्भक का फल।

कुम्भकःसूर्यभेदस्तु जरामृत्युविनाशकः।
बोधयेत्कुंडलींशक्तिं देहानलविवर्द्धनः॥
इतितेकथितंचण्ड सूर्यभेदनमुत्तमम् ॥६७॥

यह सूर्यभेद नामक कुम्भक जरा (बुढ़ाई) मरण इन सब को नष्ट
करता है। इसके साधन से कुण्डलिनी शक्ति जाग उठती है और देहकी
अग्नि बढ़जाती है अर्थात् क्षुधा लगती और भोजन किया पदार्थ पच
जाता है॥

तात्पर्य–शरीर सञ्चारी जितने प्रकार के वायु जिनाम आयेहैं और
जिनके कार्य्य दिखाय आये हैं वे यदि अपने २ कार्य्य को ठीक परिमाण
से किया करैं तो शरीर निरोग रहता है और यदि अधिक प्रमाण से या
अल्प प्रमाण से करैं तो रोग वृद्धि के कारण हैं तथा मानसिक शक्ति को
पदाप के उन्हीं व्यापारों की ओर झुकाये रहते हैं। जैसे हृदय का बहुत
जल्द २ धकधकाना, प्राणकी अधिकता है, ऐसही वायुका अधिक छूटना
अपान के कार्य्य की अधिकता है, पेट का अधिक फूलना समान वायु के
कार्य की अधिकता है, श्वास का अधिक चलना (दमा) आदि उदान के
कार्य की अधिकता है, इसीप्रकार शरीर की पीड़ा व्यान के कार्य्य की अधि-
कता है, जल्द २ पलकों का फिरना कूर्म के कार्य्य की अधिकता है, क्षुधा
तृष्णा का अधिक होना या हिचकी का बढ़ना कृकर के कार्य्य की अधि-
कता है, जमुहाई का अधिक होना देवदत्त के कार्य की अधिकता है वा
तथा शब्द में कर्कशता होना आदि धनंजय के कार्य की अधिकता है
इन सबों की न्यूनता, यानी हृदय कम धकधकाय, अपान वायु छूटै
नहीं, पेट में सुस्ती रहै, सांस लेन में कष्ट का दुःख हो, पलकोंमें सुस्ती आ
जाये इत्यादि भी रोगों के उत्पत्ति के कारण हैं, तथा इनकार कम जावै या

न आवे, पलक न फिरैं या कम फिरैं क्षुधा तृष्णा न लगैं या कम लगैं, जमुहाई न आवे, वा कम आवे शब्द उच्चारण न किया जाय वा स्वर मद हो जाय इत्यादि भी रोगों के प्रकार हैं. इनसे शरीर दुखी रहता है, मन विकल रहता, तथा मानसिक शक्ति की उत्तेजना जाती रहती है, बुद्धि विषम हो जाती है, स्मृति नष्ट हो जाती है इत्यादि नाना प्रकार की अशांति आजाती है । योगाभ्यास से जैसे कि सूर्यभेद कुम्भक कह आये इससे इन सब प्राणादि वायू के कार्य अपने आधीन (काबू) में रहते हैं चहै घटावे चहै बढ़ावे, चहै बन्द करदे, चहै ठीक २ होने दे इत्यादि । मुख्य बात यह है कि जब इन वायु के कार्यों से कोई कष्ट प्राप्त हो तब उक्त कुम्भक से शांत कर सक्ता है, जैसे कि खांसी या हिचकी होने लगी तो यह कुम्भक करने से फटपट बंद हो सक्ती है, इसकी परीक्षा भी की गई है. इसी निमित्त यह योगशास्त्र सब प्रकार के रोगों की एक मात्र दिव्य औषध है जो अपने शरीरही में सदा वर्त्तमान है कहीं ढूंढने की जरूरत नहीं रहैगी । इससे योग विद्या में मनुष्यों को अब चित्त लगाना चाहिये ॥

उज्जाययी कुंभक ।

नासाभ्यांवायुमाकृष्य वायुंवक्त्रेणधारयेत् ।
हृद्गलाभ्यांसमाकृष्य मुखमध्येचधारयेत् ॥६८॥

बाहरी वायु को नाक के दोनों छेदों से खींच कर मुख में धारण करे । तथा शरीर के भीतर की वायु को भी हृदय और गले के योग और दबाव से खींच कर मुख में उसी वायु के साथ मिलाय दे जो कि पहिले बाहर से खींच कर भरी गई थी ॥

मुखंप्रक्षाल्यसंवंद्य कुर्याज्जालंधरंततः ।
आशक्तिकुम्भकंकृत्वा धारयेदविरोधतः ॥६९॥

जब बाहरी भीतरी दोनों वायु मुख में एकत्र करै तब ऊपर से मुह धोय डाले और सम्यक् बन्दनादि करके जालन्धर बन्ध नामक मुद्रा आचरण करै। और जहां तक शक्ति रहै कुम्भक प्राणायाम के योग से वायु को मुख में धारण किये रहै परन्तु कोई विघ्न न पड़ने पावे बाद मुखही से रेचन करै। इसी को उज्जायी कुम्भक कहते हैं॥

उज्जाय्यी कुम्भक का फल।

उज्जायीकुम्भकंकृत्वा सर्वकार्याणिसाधयेत्।
न भवेत्कफ रोगं च क्रूरवायुरजीर्णकम् ॥७०॥
आमवातं क्षयंकासं ज्वरंप्लीहा न विद्यते।
जरामृत्यु विनाशायचोज्जायीं साधयेन्नरः ॥७१॥

उज्जायी नामक कुम्भक को करके सब कार्य साधन करना चाहिये। इस कुम्भक के करने से कफ के रोग नहीं होते। क्रूर वायु (रूख वायु का विकार) अजीर्ण, आमवात, क्षयी, खांसी, ज्वर, प्लीहा, ये सब रोग भी नहीं सताते। जो मनुष्य जरा मृत्यु को विनष्ट किया चाहै वह इस उज्जायी को अवश्य साधन करै॥

शीतली कुम्भक।

जिह्वया वायुमाकृष्य उदरे पूरयेच्छनैः।
क्षणंचकुंभकं कृत्वा नासाभ्यां रेचयेत्पुनः ॥७२॥

जिह्वा द्वारा वायु को आकर्षण करै अर्थात् जीभ को ओठों के बाहर निकाल के ओठों को दावै और जिह्वित सांस रक्खै जिसे वायु भीतर की ओर खींचे चलाआवे। अनन्तर उस वायु को धीरे २ उदर के

भीतर पूरक करे और जब शक्ति भर वायु खींच ले तब कुछ थोड़े ही काल तक कुम्भक करे और फिर नाक के दोनों छेदों से रेचन कर दे। यहां पर यह विवेचना भी रक्खै कि पहिले ही से नासिका के दोनों छेदों को मूद ले तब जिह्वा से वायु खींचे? या नाक के छेद खुले रहैं तब खींचे? तो ऐसी दशा पर यह निश्चय रखना चाहिये कि यह शीतली कुंभक दोनों प्रकार से हो सक्ता है और दोनों प्रकार की साधना से गुण दायक हो सक्ता है परंतु बिना नासिका दबाये पर उत्तम है।

शीतली कुम्भक का फल ।

सर्वदा साधयेद्योगी शीतली कुंभकं शुभम् ।
अजीर्णं कफ पित्तंच नवतस्य प्रजायते ॥७३॥

योगी सर्वदा अर्थात सब काल में जहां कहीं रहे इस शुभकारी शीतली कुम्भक को साधन करे। इससे अजीर्ण, कफ रोग, पित्त विकार, ये कभी नहीं उस साधक को सताय सके।

भस्त्रिका कुम्भक ।

भस्त्रेव लौहकाराणां यथा क्रमेण संभ्रमेत् ।
तथावायुंच नासाभ्यामुभाभ्यांचालयेच्छनैः॥७४॥

जिस प्रकार लोहार की धौंकनी बार २ उठ २ के वायु खींचती है उसी प्रकार नाक के दोनों छेदों से धीरे २ वायु को बार २ खींचे और उदर में पूर्ण करे।

एवंविंशति वारञ्च कृत्वा कुर्याच्च कुम्भकम् ।
तदन्ते चालयेद्वायुं पूर्वोक्तञ्च यथाविधि ॥७५॥

त्रिवारं साधयेदेनं भस्त्रिका कुंभकं सुधीः।
नचरोगं नचक्लेशमारोग्यंच दिनेदिने ७६॥

इसी प्रकार जैसा कि पहिले कह आये हैं बीस बार वायु खींचकर फिर कुंभक करें जब कुंभक शक्ति भर पूरा हो जाय तब उसी प्रकार जैसा कि पहिले धौंकनी की तरह खींचने को कह आये हैं, उसी नाकके छेदों से बीस बार के झोकासे रेचन करै। इसी प्रकार इस भस्त्रिका कुंभक को बुद्धिमान नर तीन बार साधन करै तो उसके न रोग हों न कोई क्लेश हो और दिन २ आरोग्यता प्राप्त होगी॥

भ्रामरी कुम्भक।

अर्द्धरात्रिगते योगी जन्तूनां शब्दवर्जिते।
कर्णौपिधायहस्ताभ्यां कुर्यात्पूरककुंभकम्॥७७॥

जब आधी रात बीत जावे तब योगी एकान्त स्थान में जाय, जहां कि किसी जीव जन्तु का शब्द न सुन पड़ता हो, वहां बैठ कर दोनों हाथों से कान मूंद ले और पूरक तथा कुंभक प्राणायाम करै॥

शृणुयाद्दक्षिणे कर्णे नादमन्तर्गतं शुभम्।
प्रथमंझिल्लि नादञ्च, वंशीनादं ततःपरम्॥७८॥
मेघझर्झर भ्रमरी, घंटा कांस्यं ततः परम्।
तुरी भेरी मृदङ्गादि निनादानक दुन्दुभिः॥७९॥

जब पूर्वोक्त विधि से योगी कुंभक करैगा तब उसको ध्यान दे कर दहिने कान से सुनना चाहिये, उस समय शरीरान्तर्गत जो शुभ नाद है वह सुनाई पड़ेगा, पहिले झींगुर कासा शब्द सुन पड़ेगा फिर थोड़ी देर

में वंशी का सा शब्द सुन पड़ेगा, उसके उपरान्त मेघों की सी गर्जन सुनाई देगा, उसके उपरान्त झांझ का शब्द सुन पड़ेगा, फिर भ्रमरी का सा गुनगुनाना सुन पड़ेगा, उसके बाद घंटा का सा नाद सा सुन पड़ेगा, उस के बाद मजीरा का शब्द सुन पड़ेगा, फिर तुरही का सा नाद, फिर भेरी (नरसिंहा) फिर मृदङ्ग, फिर नगाड़े का सा शब्द सुन पड़ेगा॥

एवंनानाविधंनादं जायने नित्यमभ्यसात् ।
अनाहतस्यशब्दस्य तस्यशब्दस्य याध्वनिः ॥८०॥
ध्वनेरन्तर्गतंज्योतिर्ज्योतिरन्तर्गतंमनः ।
तन्मनोविलयंयाति तद्विष्णोः परमंपदम् ॥
एवंभ्रामरी संसिद्धः समाधिसिद्धिमाप्नुयात् ॥८१॥

उक्त नाना प्रकार के नाद तभी उत्पन्न होंगे जब कोई मनुष्य प्रति दिन अभ्यास करे, अन्यथा चाहे कि एकही दिनमें सुन पड़े सो नहीं॥

उस अनाहत (जिसको किसी ने नहीं किया आपही होता है) उसकी अद्भुत ध्वनि उस ध्वनि के अन्तर्गत एक प्रकार की ज्योति उत्पन्न होती है, उस ज्योति के अन्तर्गत मन है, उसमें लय हो जाता है, यही विष्णु का परम पद है, इसी प्रकार भ्रामरी कुम्भक सिद्ध हो जाने पर समाधि सिद्ध हो जाती है ।

तात्पर्य—जब साधक भ्रामरी कुम्भक के योग से आंख मूद कर हृदय के मध्य में जो द्वादश दल कमल है उसको देखेगा और उस अनाहत नाद की अद्भुत ध्वनि सुनेगा तब मन अवश्य एकाग्र होगा। उस समय आंख के मूदने पर भी भीतर एक प्रकार की दृष्टि उत्पन्न होती है उस दृष्टि से एक प्रकार की ज्योति मालुम पड़ती है। यही ज्योति विष्णु का परम पद है। अर्थात् इसी अवस्था से और संसार की सुषुप्तावस्था से

कुछ भी फर्क नहीं है। योगी लोग उस अवस्था को इसी शरीर में प्राप्त कर परमानन्द लाभ किया करते हैं। ध्वनि एक ऐसा पदार्थ है कि मन उधर स्वभावही से जा संलग्न होता है। जैसा कुछ ध्वनि में मन एकाग्र होता है वैसा किसी विषय में नहीं। इसी निमित्त कहा है कि:—

"जपादष्टगुणंध्यानं ध्यानादष्टगुणंतपः।
तपसाऽष्टगुणं गानंगानात्परतरंनहि" ॥

यानी जप करने से आठगुना मन ध्यान में लगता है और ध्यान से आठगुना तप में क्योंकि तप मन इन्द्रिय दोनों को एकत्र करदेता है ध्यान जल्द लगता नहीं। तप से आठगुना गान में क्योंकि श्रवण शक्ति सब तरफ से मन को खींच लेती है। गान से परे कोई भी वस्तु नहीं है जो मन को एकाग्र कर सके इत्यादि। मुख्य बात यह है कि योग विद्या का सार समाधि वह समाधि इस भ्रामरी नामक कुंभक से बहुत जल्द सिद्ध हो सक्ती है ॥

मूर्च्छा कुम्भक।

सुखेनकुम्भकंकृत्वा मनश्चभ्रुवोरंतरम्।
संत्यज्यविषयान्सर्वान् मनोमूर्च्छासुखप्रदम् ॥
आत्मनिमनसोयोगा दानंदोजायतेध्रुवं ॥८२॥

प्रथम सुख से सहित पूर्व कथित विधान से कुम्भक प्राणायाम करै और मन को दृष्टि के द्वारा भौंहों के बीच में लगाय दे। और जितने विषय, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द आदि हैं सब से मन को निवृत्त कर ले। भौंहों के मध्य में आज्ञा पुर नामक द्विदल श्वेत कमल है उसी में

मन को संयुक्त करै । और मन सुख मद मूर्च्छित की भांति हो जावे । और मन के योग से परमात्मा में लय हो जाय इससे निश्चय आनन्द प्राप्त होता है ॥

केवली कुम्भक ।

हंकारेणबहिर्याति सः कारेणविशेत्पुनः ।
षट्शतानिदिवारात्रौ सहस्राण्येकविंशतिः ॥
अजपानामगायत्रीं जीवोजपतिसर्वदा ॥८३॥

स्वास वायु जब भीतर से बाहर निकलता है तब (हं) यह अक्षर उच्चरित होता है । और जब स्वास भीतर की ओर खींचता है तब (सः) यह अक्षर उच्चारित होता है । ये दोनों अक्षरों का समूह एकइस हजार छः सौ २१६०० दिन रात में उच्चारित होता है अर्थात् दिनरात में इतने स्वास चलते हैं । इन दोनों अक्षरों का विचार तंत्रकारों ने यह किया है कि (हं) शिव । (सः) शक्ति है । तथा (हंसः) और (सोहं) दोनों पद एकही वस्तु हैं । इस्से इसको अजपा गायत्री कहते हैं (आप ही आप निकलने से अजपा है) सो जीव इसको सदाही जपता रहता है ॥

मूलाधारेयथा हंसस्तथाहिहृदिपंकजे ।
तथानासापुटद्वंद्वे त्रिभिर्हंसङ्गमागमम् ॥८४॥

मूलाधार अर्थात् लिङ्ग और गुदा के मध्य भाग में हृदय पद्म अर्थात् अनाहत नामक कमल में, तथा नाक के दोनों छेद अर्थात् इडा और पिङ्गला नाडी में इन तीनों स्थानों से (हंसः) रूप अजपा का जप हुआ करता है । अर्थात् इन तीनों स्थानों से स्वास वायु का गमनागमन हुआ करता है ॥

षण्णवत्यंगुलीमानं शरीरं कर्मरूपकम् ।
देहाद्बहिर्गतोवायुः स्वभावोद्वादशांगुलिः ॥८५॥
गायनेषोड़शांगुल्यो भोजनेविंशतिस्तथा ।
चतुर्विंशांगुलीःपंथः निद्रायां त्रिंशदंगुलिः ॥
मैथुनेषट्त्रिंशदुक्तं व्यायामेचततोऽधिकम् ॥८६॥

और २ शास्त्रों के हिसाब से मनुष्य का देह ८४ अंगुल का प्रमाण, अर्थात् साढ़े तीन हाथ लम्बा है, परन्तु योग शास्त्र के हिसाबसे मनुष्य शरीर ९६ छानवे अङ्गुल का है। इस भेद का कारण यह है कि और शास्त्र कार खड़े मनुष्य की बराबर एक दण्ड खड़ाकर नापते हैं तो ठीक ८४ अङ्गुल उसी की शरीर के अङ्गुल से होगा, परन्तु योग शास्त्रवाले पैर के अँगूठे के बल मनुष्य को खड़ा कर के डोरे से नापते हैं और वह डोरा नाक के ऊपर होकर ब्रह्मरंध्र में लगाते हैं जिस्से १२ अंगुल और भी बढ़ जाता है। इस्से ९६ छानवे अंगुल का मनुष्य शरीर है। इसी लिये दि-खलाया दिया है कि (कर्म रूपकं) अर्थात् अंगूठे से ले ब्रह्मरंध्र तक कर्म रूपक शरीर है और केवल नाप वाला तो ८४ अंगुल है ॥

अब शरीर के वायु को भी योग शास्त्र उतना ही लम्बा मानते हैं जितना लम्बा कि शरीर है। यानी ९६ अंगुल परिमाण शरीर के अभ्यन्तर वाला कर्म स्वरूप वायु है। यही वायु जब देह के बाहर स्वाभाविक श्वास प्रश्वास द्वारा होता है तब उसकी दौड़ शरीर से बाहर बारह १२ अंगुल की होती है। यानी मुंह या नाक या अपान से जब आपही आप वायु निकलता है तब केवल १२ अंगुल तक जाता है। जब गान किया जाता है तब कुछ वेग अधिक होता है इस्से यह वायु १६ सोलह अंगुल तक जाता है। भोजन में अन्न जल भीतर पैठता है तब भीतर से वायु दबाव के कारण बीस अंगुल तक शरीर के बाहर जाता

है । इसी प्रकार पंथ (रास्ता) चलने में चौबीस २४ अंगुल बाहर जाता है क्योंकि परिश्रम से वायु का वेग बढ़ता है तो बाहर की गति भी बढ़ जाती है निद्रा में तीस अंगुल तक बाहर जाता है क्योंकि उस समय मानसिक व्यापार जो वायु के व्यापार को कुछ थांभे रहते हैं वे शिथिल रहते हैं और वायु का आना जाना बेरोक रहता है । मैथुन में छत्तीस अंगुल शरीर से बाहर वायु जाता है, क्योंकि उसमें शरीर की समस्त नाड़ियों का वायु कंपित हो कर झोंक से निकलता है । मुख्य करके वीर्य पतन में इसका स्वरूप प्रत्यक्ष होता है । और व्यायाम, यानी कसरत, या दौड़ना, वा कोई काम वेग से या मेहनत से करने पर उससे भी अधिक वायु शरीर से बाहर निकल के जाता है और यही उसका स्वरूप कहा जाता है ॥

स्वभावेऽस्यगतेर्न्यूने परमायुःप्रवर्द्धते ।
आयुःक्षयोऽधिकेप्रोक्तो मारुतेचान्तराद्गते ॥८७॥

स्वाभाविक श्वास वायु का परिमाण केवल १२ बारह अंगुल बाहर गति में कह आये हैं, सो यदि उससे कम गति किसी प्रकार शरीर से बाहर गमन में होय तो परमायु (उमर) बढ़ जाती है और यदि स्वाभाविक वायु की गति उससे (१२ अंगुल से) अधिक हो जाय तो आयु क्षय होती है ।

• विवेचना.—स्वाभाविक वायु का पतन। चिन्ता, व्याधि, शोक, आदि के अभाव मे आनन्द युक्त शरीर में होता है और उसका बढ़ना उन्हीं चिन्ता, व्याधि शोक आदि से होता है, इसी वायु को ठीक रखने या कम परिमाण से बाहर निकलने के लिये योग शास्त्र की आवश्यकता है । उपर गान, भोजन, पन्थ, निद्रा, मैथुन, व्यायाम इनमें जो वायु बढ़ के जाता है । इनमें भी आयु के पक्ष में हानि पहुंचती है, परन्तु यदि गान को छोड़ के ये सब कम परिमाण से आचरण किये जायँ और

कुम्भक अधिक बढ़ाय दिया जावे तो आयुके पक्षमें हानि न पहुंचेगी, या भोजन का छोड़ बिलकुल न किये जावें तो और भी उत्तम है। फिर पूरा कुम्भक यदि करसकै अर्थात् शत, सहस्र, वा असंख्य वर्ष तक श्वास रोक सकै तो भोजन की भी कोई आवश्यकता नहीं रहैगी। रहा गात उसमें यद्यपि वायु शरीर से अधिक प्रभाव निकलती है तो भी उसका एक दूसरा गुण यह है कि नित्य के अभ्यास से कंठ नली आदि की नाड़ियां कभी पड़जाती हैं इससे बाहर की जो बिकारी वायु प्रतिक्षण पैठ कर व्याधि उत्पन्न करती है वह नहीं ठहरने पाती, वही प्रायः छन २ के निकला करती है. और यदि विशुद्ध ध्यान ज्ञान वा उपदेश विषयक गान होता है तो चित्त को परमानन्द प्रदान करता है॥

आयाम के विषय में भी यही बात है कि अभ्यास से नाड़ी, पेशी, हड्डी सब पुष्ट होती हैं और बिकारी वायु का असर नहीं होता, परन्तु वह आयाम के प्रयोग भी इसी योग के रीति से होना चाहिये, नहीं तो पहिले तो नाड़ी आदि पुष्ट होती हैं किन्तु जहां थोड़ा भी विकार भीतर पहुंच के रक्त में मिला वहां तुरन्त आयु क्षय करता है। इससे पूर्वोक्त आसनों की रीति से ही आयाम ठीक है अन्यथा शरीर का प्राणवायु नष्ट हो जाता है॥

तस्मात्प्राणेस्थितेदेहे मरणंनैवजायते ।
वायुनाघटसम्बन्धे भवेत्केवलकुम्भकम् ॥८८॥

जिस्से यह सिद्धान्त है कि जब तक प्राणवायु देह में स्थित रहता है तब तक मरण नहीं होता। इसीलिये शरीर रक्षा के सम्बन्ध में उस प्राणवायु के द्वारा केवल कुम्भकही मुख्य है॥

यावज्जीवोजपेन्मन्त्र मजपासंख्यकेवलं ।
अद्यावधिधृतंसंख्या विभ्रमकेवलीकृते ॥८९॥

अतएवहिकर्तव्यः केवलीकुम्भकोनरैः ।
केवलीचाजपासंख्या द्विगुणाचमनोन्मनी ॥९०॥

मनुष्य जब तक जीता रहै तब तक जैसी संख्या विहित है उसी प्रकार अजपा मन्त्र जपै देह के भीतर प्राणवायु के समागम सेही केवली कुम्भक साधित होता है, इससे मनुष्यों को केवली कुम्भक अवश्य करना चाहिये। केवली कुम्भक में अजपा की संख्या यदि दूनी करके जपै तो वह अजपा मन को दिन २ उन्मन अर्थात् ऊंचे भाव को पहुंचाती है॥

नासाभ्यांवायुमाकृष्य केवलकुम्भकंचरेत् ।
एकादिकचतुःषष्ठं धारयेत्प्रथमेदिने ॥९१॥

नाक के दोनों छेदों से वायु को खींच के केवल कुंभक का साधन करै और उस कुम्भक के समय पहिले दिन पूर्वोक्त अजपा मन्त्रकी संख्या एक से लेकर ६४ तक चौंसठ बार पूरी न हो तबतक धारण किये रहै॥

केवलीमष्टधाकुर्या द्यामेयामेदिनेदिने ।
अथवापञ्चधाकुर्या द्यथातत्कथयामिते ॥९२॥

इस प्रकार से केवली कुम्भक को प्रतिदिन आठ पहर में आठ बार करना चाहिये, अथवा प्रतिदिन पांच बार साधन करै। यह घेरण्ड जी शिष्य से कहते हैं, जैसा कि तुम से हम कहते हैं॥

प्रातर्मध्यान्हसायान्हे मध्येरात्रिचतुर्थके ।
त्रिसंध्यमथवाकुर्या त्समानेदिनेदिने ॥९३॥

प्रातःकाल, मध्याह्न, सायंकाल, मध्यरात्रि, तथा रात्रि के शेष भाग में। अथवा यह भी न हो सके तो तीनों संध्याओं में बराबर भाग से करै, परन्तु प्रतिदिन इस्से कभी न चूके॥

पञ्चवारंदिनेवृद्धिर्वारैकंचदिनेतथा।
अजपापरिमाणंच यावत्सिद्धिःप्रजायते ॥९४॥

जब तक यह केवली कुम्भक सिद्ध न हो लेय तब तक प्रति दिन अजपा का परिमाण एक वार अथवा पांच बार क्रम से बढ़ाते जाना चाहिये ॥

प्राणायामंकेवलींच तदावदतियोगवित्।
कुम्भकेकेवलीसिद्धौ किंनसिद्ध्यतिभूतले ॥९५॥

जब साधक केवली कुम्भक साधन कर लेता है तब वह योगवित् अर्थात् योग विद्या का जानने वाला, कहा जाता है। केवली कुम्भक सिद्ध होने से भूतल में ऐसी कोई वस्तु नहीं बाकी रहती जो सिद्ध न हो अतएव केवली कुम्भक को अवश्य साधन करना उचित है ॥

इति श्री घेरण्डसंहितायां घेरण्ड चण्डकापालि सम्वादे
घटस्थ योगप्रकरणे प्राणायाम प्रयोगो नाम
पञ्चमोपदेशः ॥ ५ ॥

षष्ठोपदेशः।

अथ ध्यान योगः।

स्थूलंज्योतिस्तथासूक्ष्मं ध्यानस्यत्रिविधंविदुः।
स्थूलंमूर्तिमयंप्रोक्तं ज्योतिस्तेजोमयंतथा॥
सूक्ष्मंबिन्दुमयंब्रह्म कुण्डलीपरदेवता ॥१॥

घेरण्ड महाराज प्राणायाम की विधि कहकर ध्यानयोगका प्रकरण कहते हैं उसमें ध्यान तीन प्रकार वर्णन करते हैं, १ स्थूलध्यान, २ ज्योतिर्ध्यान, तथा ३ सूक्ष्म ध्यान, तिनमें स्थूल ध्यान मूर्तिमय होता है अर्थात् जिस देवता की मूर्ति में साधक की रुचि हो वा गुरु की मूर्ति का चिन्तवन । जिसकेद्वारा तेजोमय ब्रह्म अथवा प्रकृतिका ध्यान किया जाय उसको तेजोमय ध्यान कहते हैं । इसी प्रकार जिस ध्यान के द्वारा विंदुमय ब्रह्म तथा कुण्डलिनी शक्ति का दर्शन प्राप्त होता है उसको सूक्ष्म ध्यान कहते हैं ॥

स्थूल ध्यान की विधि ।

स्वकीयहृदयेध्यायेत्.सुधासागरमुत्तमम् ।
तन्मध्येरत्नद्वीपन्तु सुरत्नवालुकामयम् ॥२॥

साधक आसन बांध के दोनों नेत्र मूदकर अपने हृदय के मध्य में ऐसी चिन्ता करै मानों परमोत्तम अमृत भरा सागर वर्त्तमान है । और उसी समुद्र के मध्य में एक रत्नमय द्वीप विराजमान है । उसी रत्नमय द्वीप में रत्न रूपी बालू की राशि चारोंओर फैली है और अपूर्व शोभा बढ़ाय रही है ॥

चतुर्दिक्षुनीपतरुर्बहुपुष्पसमन्वितः ।
नीपोपवनसंकूले वेष्ठितंपरिखाइव ॥३॥

उस रत्न द्वीप के चारों ओर नीप के वृक्ष बहुतर पुष्पों के सहित विराजमान हो रहे हैं । उस नीप के उपवन की शोभा मानों किले की खाई है ऐसी मालुम हो रही ॥

मालतीमल्लिकाजाती केशरैश्चंपकैस्तथा ।
पारिजातैःस्थलैःपद्मैर्गन्धामोदितदिङ्मुखैः ॥४॥

उस सौध वृक्ष के चारों ओर मालती, चमेली, जूही, केशर, चम्पक, परिजात, स्थल पद्म फूल रहे हैं तथा उनकी सुगन्धि से दशोदिशा महक रही हैं ॥

तन्मध्येसंस्मरेद्योगी कल्पवृक्षंमनोहरम् ।
चतुःशाखाचतुर्वेदं नित्यपुष्पफलान्वितम् ॥५॥

इसके अनन्तर योगी उसी रत्न द्वीप के मध्यमें एक मनोहर कल्प वृक्ष में चार शाखा (डाल) चारों वेदों को ध्यान बलसे स्थापन करे, उन चारों वेदमई डालों में नित्य पुष्प (नित्त नैमित्तक काम्य कर्म) और शुभ कर्म के फल की प्रगटा रूपी फल युक्त ध्यान करे ॥

भ्रमराःकोकिलास्तत्र गुंजन्तिनिगदन्तिच ।
ध्यायेत्तत्रस्थिरोभूत्वा महामाणिक्यमण्डपम् ॥६॥

उसी वेद मई शाखा के पुष्पों में भ्रमर कोकिल (भजनमें परायण साधुसज्जन) गूंज रहेहैं (पद पढ़ाय रहे हैं) और निगदन्ति (परस्पर उपदेश) कर रहे हैं। फिर उसी वृक्ष के नीचे स्थिर भावसे ध्यान करे मानो एक बड़ा भारी सोने का मण्डप बना है और शोभा बढ़ाय रहा है ॥

तन्मध्येतुस्मरेद्योगी पर्यंकंसुमनोहरम् ।
तत्रेष्टदेवतांध्यायेद्यद्ध्यानंगुरुभाषितम् ॥७॥

फिर उस मण्डप के मध्य में योगी यह स्मरण करे मानों एक मनोहर दिव्य रत्न मय पलँग बिछा है फिर उस पलङ्ग के ऊपर इष्ट देवता का ध्यान करे जैसा कि गुरु ने कहा है ॥

यस्यदेवस्ययद्रूपं यथाभूषणवाहनम् ।
तद्रूपध्यायतेनित्यं स्थूलध्यानमिदंविदुः ॥८॥

जिस देवता का जैसा रूप हो वैसाही भूषण और वाहन यह सब तद्रूप नित्यही ध्यान करै । इसी को स्थूल ध्यान कहते हैं ॥

तात्पर्यः—पहिले जो चारो वेद शाखा वर्णन किया है इससे यह साफ जाहिर होता है कि योगियों को वैदिक मार्ग का प्रचार अधिक करना उचित है क्योंकि ध्यान कोटि में उसी का रूपक बांधा है ॥

प्रकारांतर स्थूल ध्यान ।

सहस्रारेमहापद्मेकर्णिकायांविचिन्तयेत् ।
विलग्नसहितंपद्मं द्वादशैर्दलसंयुतम् ॥९॥

अथ दूसरी भांति का स्थूल ध्यान वर्णन करते हैं । ब्रह्म रंध्र में सहस्रार नामक एक सहस्र दल कमल है. तहां योगी इसी रूप से ध्यान करै कि उस महा पद्म की पखुरियों के बीच जो कलिका है उसमें भी एक द्वादश दल कमल है ॥

शुक्लवर्णंमहातेजो द्वादशैर्बीजभाषितम् ।
ह स क्ष म ल व र यूं, ह स ख फ्रें यथाक्रमम् ॥१०॥

यह द्वादश दल कमल श्वेत वर्ण है और तेज से चमक रहा है, और इसी कमल के द्वादश दलों में क्रम से आगे लिखे अक्षर बीच करके बैठारे हैं । यथाः—ह, स, क्ष, म, ल, व, र, युं, ह, स, ख, फ्रें । येही बीजाक्षर हैं ॥

तन्मध्येकर्णिकायांतु अ क थ।दिरेखात्रयम् ।
ह ल क्ष कोणसंयुक्तं, प्रणवंतत्रवर्त्तते ॥११॥

इसी द्वादश दल कमल के मध्य में जो कलिका है उसके बीच अ,

क थ, ये तीन वर्ण, तीन रेखा और ह, ल क्ष, ये तीन वर्ण तीन कोनों में मिले हुये हैं, तथा मध्य भाग में प्रणव अर्थात् ओंकार विद्यमान है ॥

नादविन्दुमयंपीठं ध्यायेत्तत्रमनोहरम् ।
तत्रोपरिहंसयुग्मं पादुकातत्रवर्तते ॥१२॥

योगी इसप्रकार ध्यान करैं मानों वहां नादबिन्दु मय एक मनोहर पीढ़ा बिछा है, उसके ऊपर एक हंस का जोड़ा विराजमान है और वहीं एक जोड़ी पादुका (खड़ाऊं) भी धरे है ॥

ध्यायेत्तत्रगुरुन्देवं द्विभुजंचत्रिलोचनम् ।
श्वेताम्बरधरन्देवं शुक्लगन्धानुलेपनम् ॥१३॥

तहांही दो भुजा युक्त और तीन नेत्र युक्त गुरुदेव का ध्यान करै और उन गुरुदेव का वस्त्र श्वेत, दिव्य रूप, और मानों शुक्लवर्ण गन्ध शरीर में लेपन किये है ॥

तात्पर्य्य—यहां पर गुरु को द्विभुज कह के त्रिनेत्र इसलिये कहा है कि गुरु विशेष ज्ञानी होना चाहिये, उसके सामान्य नेत्रों की अपेक्षा विज्ञान नेत्र भी एक विशेष नेत्र रहता है जिससे सद्मत् प्रत्यक्ष होता है आजकल जो लोग मोटी बुद्धिवालों को गुरु करते हैं यह ठीक नहीं है ॥

शुक्लपुष्पमयंमाल्यं रक्तशक्तिसमन्वितम् ।
एवंविधगुरुध्यानात् स्थूलध्यानंप्रसाध्यति ॥१४॥

और यह भी ध्यान करै मानों गुरु जी श्वेत पुष्पोंकी माला पहिने रक्त वर्ण की शक्ति के सहित विराजमान हैं। इसप्रकार गुरु के ध्यान करने से स्थूल ध्यान साधित होता है ॥

तात्पर्य्य—रक्त शक्ति समन्वित इसलिये कहा है कि गुरू में किसी प्रकार की ढिलाई न होर, रक्त वर्ण का गुण तेजस्वी बोधक है ॥

अथ ज्योतिर्ध्यान।

कथितंस्थूलध्यानन्तु तेजोध्यानंशृणुष्वमे ।
यद्ध्यानेनयोगसिद्धि रात्मप्रत्यक्षमेवच ॥१८॥

घेरण्ड महाराज ने कहा, हे चण्डकापालि ! हमने तुम से स्थूल ध्यान कहा अब तेजो ध्यान कहते हैं उसे सुनो, जिस ध्यानसे योग सिद्ध होता है और आत्मा भी प्रत्यक्ष हो जाता है । अर्थात् कार्य कारण प्रगट हो जाता है ॥

मूलाधारेकुण्डलिनी भुजङ्गाकाररूपिणी ।
जीवात्मातिष्ठतितत्र प्रदीपकलिकाकृतिः ॥१६॥
ध्यायेत्तेजोमयंब्रह्म तेजोध्यानंपरात्परं ॥

मूलाधार अर्थात् गुह्य देश और लिङ्ग मूल के मध्य स्थान में, कुण्डलिनी शक्ति भुजङ्ग (सर्प) के आकार में विराजमान है, उसी स्थान में दीप शिखा की तरह जीवात्मा भी विराजमान है उसी स्थान में ज्योति रूपी ब्रह्म का ध्यान करना चाहिये। क्योंकि तेजो ध्यान वा ज्योतिर्ध्यान कहते हैं, यह ध्यान योगी को परात्पर है ॥

प्रकारांतर ज्योतिर्ध्यान।

भ्रुवोर्मध्येमनोर्द्ध्वंच यत्तेजःप्रणवात्मकम् ।
ध्यायेज्ज्वालावलीयुक्तं तेजोध्यानंतदेवहि ॥१७॥

एक प्रकार ज्योतिर्ध्यान ऊपर कह आये हैं अब दूसरे प्रकार का ज्योतिर्ध्यान यह है कि दोनों भौहों के बीचमें तथा मन के ऊपर (मानसिक क्रिया के भी ऊंचे दर्जे पर) जो ओंकार मय, शिखा माला समन्वित ज्योति वर्तमान रहती है उसी ज्योति का ब्रह्मज्ञान से ध्यान करै। इस को भी तेजोध्यान वा ज्योतिर्ध्यान कहते हैं॥

तात्पर्य—जब योगी भौहों के बीच मन लगा कर ध्यान करते हैं और प्रणव का उच्चारण करते जाते हैं तब वह मन एकाग्र होके प्रणव को ही देखता है, फिर कुछ काल में प्रणव मन में रहता है वही मन तेजोमय होजाता है, तब उस भ्रू मध्य की दृष्टि और प्रणव की चिन्ता से मन की ऊर्ध्व गति के अन्तर में जो तेज प्रतिभात होता है वही ज्योति ध्यान है, इसके ध्यान से मनुष्य के शरीर में कोई भी विकार नहीं रह जाते निर्मल व मन भी प्राप्त होता है॥

अथ सूक्ष्म ध्यानम्।

तेजोध्यानंश्रुतंचण्ड सूक्ष्मध्यानंवदाम्यहम्।
वहुभाग्यवशाद्यस्य कुण्डलीजागृताभवेत् ॥१८॥

घेरण्ड महाराज कहते हैं हे चण्डकापालि। तुमने तेजोध्यान सुना अब हम तुमसे सूक्ष्म ध्यान कहते हैं वह भी सुनो। जिस मनुष्य की कुण्डलिनी जागती है वह बड़ाही भाग्यवान है॥

आत्मन.सहयोगेन नेत्ररन्ध्राद्विनिर्गता।
विहरेद्राजमार्गेच चञ्चलत्वान्नदृश्यते ॥१९॥

यह कुण्डलिनी शक्ति जब कभी किसी प्रकार भाग्य वश जागती है तब भी वह नेत्रों के छेदों से निकल कर आत्मा के साथ मिल के राज

मार्ग में विहार करने लगती है और ऐसी चञ्चलता धारण करती है कि कभी किसी प्रकार भी नहीं देख पड़ती ॥

शाम्भवीमुद्रयायोगी ध्यानयोगेनसिध्यति ।
सूक्ष्मध्यानमिदंगोप्यं देवानामपिदुर्लभम् ॥२०॥

जब कुण्डलिनी पूर्वोक्त विधियों से कदाचित् जागै और चञ्चल हो राज मार्ग में विचरै तब योगी उसे पूर्वोक्त शाम्भवी मुद्रा के योग से ध्यान करै तो तुरन्त सिद्ध हो के ध्यान में आजावेगी । यह सूक्ष्म ध्यान परम गोप्य है और देवताओं को भी दुर्लभ है ॥

तात्पर्य्य--पीछे लिख आये हैं कि कुण्डलिनी शक्ति शरीर जड़ता का रूपक है और उसका जागना जड़ता विनाश हो शरीर का आत्मा वश में होता है । प्राय अनेक योगी लोग शरीर को वश में लाकर भी योग विद्या के महान २ कार्य नहीं करते पर नेत्र इन्द्रिय के द्वारा चित्र विचित्र पदार्थों के देखने में लगी २ फिरते और गृहस्थों का माल चाभते हैं । इसीसे कहा है कि उसके चञ्चलता से योगी जन उसके रूप को थिर नहीं करसके, अर्थात् शरीर के वश होने का कार्य्य नहीं प्रगट कर सके, उसी के अभ्यास के लिये, जिससे कि शरीर वशीभूत होने के उपरान्त वाले कार्य्य योगी लोग किया करैं शाम्भवी मुद्राके योग से सिद्धि दर्शाया है । अर्थात् फिर कोई शारीरक अपचार न करै तो नीरोग हो कर यह दीर्घायु आदि कार्य्य दिखाय दे जो कि युग युगान्तर तक योगियों के स्थिति योग शास्त्रों में लिखी है । परन्तु यह सब यही दृढ़ बुद्धि के कार्य्य हैं ॥

स्थूलध्यानाच्छतगुणं तेजोध्यानंप्रचक्षते ।
तेजोध्यानाल्लक्षगुणं सूक्ष्मध्यानंपरात्परम् ॥२१॥

स्थूल ध्यान से सौगुना अधिक तेजो ध्यान कहा जाता है और तेजो ध्यान से लाख गुना अधिक सूक्ष्म ध्यान है तथा वह ध्यान परे से भी पर है॥

इतितेकथितंचण्ड ध्यानयोगंसुदुर्लभम्।
आत्मासाक्षाद्भवेद्यस्मात्तस्माध्यानंविशिष्यते॥२२॥

घेरण्ड महाराज ने कहा कि हे चण्डकापालि! हमने तुमसे इस सुदुर्लभ ध्यान योगका ब्योरा कहा, जिससे कि आत्मा साक्षात् कार होता है। और इसी कारण ध्यान योग सब प्रकार के योगो से विशेष है॥

इति श्री घेरण्ड संहितायां घेरण्ड, चण्डकापालि सम्वादे, घटस्थयोगे, सप्तमसाधने, ध्यानयोगो नाम षष्ठोपदेशः॥ ६॥

अथ सप्तमोपदेशः।

समाधि योग।

समाधिश्चपरयोगं बहुभाग्येनलभ्यते।
गुरोःकृपाप्रसादेन प्राप्यतेगुरुभक्तितः॥१॥

घेरण्ड महाराज ने चण्डकापालि से कहा कि सब योगो में परे समाधि योग है परन्तु यह बहुत ही बड़ो भाग्य से प्राप्त होता है। यह समाधि योग गुरू की भक्ति करने पर जब गुरू प्रसन्न होते है तब उनकी ही कृपा से प्राप्त होता है अन्यथा नहीं॥

विद्याप्रतीतिःस्वगुरुप्रतीतिरात्मप्रतीतिर्मनसःप्रबोधः ।
दिनेदिनेयस्यभवेत्सयोगी सुशोभनाभ्यासमुपैतिसद्यः २

जिस मनुष्य को प्रतीति विद्या (योग विद्या) में है, अपने गुरु में प्रतीति है और अपने आत्मा में प्रतीति है तथा मन का प्रबोध (दृढ़ विश्वास) है वही योगी दिन २ प्रति सुन्दर अभ्यास की गति के बहुत जल्द प्राप्त होते हैं॥

घटाद्भिन्नंमनःकृत्वा ऐक्यंकृत्वापरात्मनि ।
समाधिंतद्विजानीयान्मुक्तसञ्ज्ञोदशादिभिः ॥३॥

शरीर से मन को अलग करके सबसे परे जो परमात्मा है उसमें एकता कर दे, इसी को समाधि जानना चाहिये, यह अवस्था सब प्रकार की दशा आदि अवस्थाओं से मुक्त संज्ञक है॥

तात्पर्य्य—इसके पूर्व दूसरे श्लोकमें विद्या विषय प्रतीति कह आये हैं उसका मुख्य तात्पर्य्य यह है कि किसी विद्या की साधना यदि किया चाहै और उसमें प्रतीति न करे तो अभ्यास में चित्त कभी नहीं लगेगा। इस लिये प्रथम यह आवश्यक है कि विद्या विषय प्रतीति लावे, कि अमुक विद्या के जो अद्भुत २ कार्य वर्णन किये गये हैं वे साधनसे अवश्य हो सकेंगे। यदि पहिलेही यह उपेक्षा हो गई कि यह गपोड़ बाजी है तो उसकी क्रिया ठीक होही नहीं सकेगी। दूसरी बात गुरु में प्रतीति अर्थात् विद्या सिखाने वाले में विश्वास रखना चाहिये, यदि पहिलेही से यह बुद्धि उत्पन्न हो गई कि यह कुछ नहीं सिखाय सकेगा तो इसीलिये पहिले ही कह आये हैं कि सिखाने वाले की परीक्षा कर ले तब उसको गुरु करे तात्पर्य्य यह कि परीक्षा लेने के बाद उसमें अप्रतीति नहीं करनी चाहिये। तीसरी बात आत्म प्रतीति है अर्थात् अपने चित्त में यह न समझे कि अमुक काम हमसे नहीं हो सकेगा। ऐसा चित्त

में आने से कोई भी कार्य्य नहीं हो सके यही कारण है कि आज कल भारत वासी सदा किसी विद्या को नहीं उत्तम रीति से प्राप्त कर सके, सब में धूर्तता भरी है इसी कारण योग विद्या भी लुप्त हो गई है, साधक को ऐसा नहीं करना चाहिये । अँगरेज लोगों में यह दृढ़ता है कि कोई शख्स कोई नई विद्या की प्रगटता करना आरम्भ करता है और यह उसका ठीक तत्व नहीं हासिल कर सका तो उसके पुत्र पौत्रादि कई पुरुष तक छोड़ते नहीं कोई न कोई अवश्य प्राप्त करके तब छोड़ते हैं । इसी दृढ़ता से इस समय रेल तार, घड़ी आदि के अद्भुत२ व्यापार हम लोगों को दिखाय रहे हैं इससे अपने चित्त को कभी नहीं हटाना चाहिये । चौथी बात मन का प्रबोध है अर्थात् समझदारी भी अवश्य होनी चाहिये नहीं और की जगह और हो जायगा । ये बातें जिनमें हैं उन्हीं का अभ्यास दिन दिन बढ़ता है और उन्हीं को सिद्धि प्राप्त होती है ॥

आगे समाधि का जो लक्षण कहा है कि शरीर से मन को भिन्न करके परब्रह्म में मिलाय दे उसका तात्पर्य्य यह है कि जो प्राय सुख दु ख आदि शरीर के धर्म प्राप्त हो कर मन को आच्छादित और व्यथित करते हैं, उनको आत्म प्रबोध (ज्ञान की दृढ़ता) से यह समझ ले नागो केवल शरीर ही के लिये सुख दु ख हैं मन को नहीं । जैसे कि अगुली में फोड़ा हुआ तो मन की दृढ़ता से उस फोड़े की पीड़ा को सिर्फ अगुली ही में समझना मन से उससे लगाव न रखना, ऐसा अक्सर देखने में भी आता है कि बड़े बलवान मनुष्य के शरीर में कोई पीड़ा हुई है ता मारे चिल्लाहट के आप दुखी और कुल' कुटुम्ब टोला पड़ोसी सब को व्यथा पहुंचाता है लेकिन बहुत से दुर्बल मनुष्यों को देखा गया है कि वे उन्से भी अधिक पीड़ित होने पर भी अपने दुखी कुल कुटुम्बियों को धीरज देकर उनकी घबड़ाहट को शान्त किया करते हैं । ऐसी अवस्था में विशेष मन के प्रबोध की जरूरत है जिससे मन को शरीर से पृथक्

समझ कर परमात्मा में लगावे । अर्थात् शरीर इन्द्रिय इनके कार्य होते रहैं, उनमें शुभाशुभ का ध्यान मात्र रहे, पर मानों मन उससे दूर है यह भावना रक्खे । बस यही समाधि है । यह समाधि बहुत ही कठिन साधन है । बड़े २ योगारूढ़ पुरुषों के तन मन में छू नहीं जाता और साधारण मनुष्यों में ईश्वर की कृपा से स्वभाव ही सिद्ध देखा जाता है, इसी को जन्मान्तर का साधन कहते हैं । परन्तु जो कोई इसका साधन दृढ़ता से करैगा अवश्य फल प्राप्त कर सक्ता है इस्से परे दूसरा आनन्द और सुख मनुष्य के लिये कोई भी नहीं है । इस्से इसको अवश्य साधन करना चाहिये ॥

अहंब्रह्मनचान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहंनशोकभाक् ।
सच्चिदानन्दरूपोऽहं नित्यमुक्तस्वभाववान् ॥४॥

जो साधक सब साधनों का अभ्यास कर चुका हो और समाधि साधन किया चाहै वह अपने मन को इस ध्यान की ओर सदा झुकावे कि, मैं ब्रह्म हूं दूसरा कुछ नहीं । और निश्चय करके ब्रह्म हूं किन्तु जो समस्त व्याधि जनक शोक हुआ करते हैं उसका भागी मैं नहीं हूं, केवल शरीर है । मैं तो केवल सत (तीनों काल में एक समान) चित (सत् असत् का जानने वाला चैतन्य) आनन्द रूप (सुख दुख रहित समान एक भोक्ता) सब बन्धनों से नित्यही छूटा हुआ अपने असली भावों से युक्त (विद्यानन्दी) हूं ऐसी ही भावना सदा चित्त में रक्खे ॥

अथ समाधि के कई भेद हैं उनका वर्णन
करते हैं; यथाः—

शाम्भव्याचैवखेचर्य्या भ्रामर्य्यायोनिमुद्रया ।
ध्याननादरसानंद लयसिद्धिश्चतुर्विधा ॥५॥

पञ्चधाभक्तियोगेन मनोमूर्च्छाचपड्विधा।
षड्विधोयंराजयोगः प्रत्येकमवधारय ॥६॥

समाधि योग छः प्रकार से है जैसे—१ ध्यान योग समाधि। २ नाद योग समाधि, ३ रसानन्द योग समाधि, ४ लय सिद्धि योग समाधि, ५ भक्तियोग समाधि ६ राजयोग समाधि। ये छः प्रकार की समाधियों को छः प्रकार की मुद्राओं से साधन करना चाहिये। शांभवीमुद्रा से ध्यान योग समाधि, खेचरीमुद्रा से नादयोग समाधि, भ्रामरी नाम कुम्भक के योग से रसानन्दयोग समाधि, योनिमुद्रा के योग से लय सिद्धि योग समाधि, भक्ति अवलम्ब पूर्वक भक्ति योग समाधि, इसी प्रकार मनो मूर्छा नामक कुम्भक के योग से राजयोग समाधि का साधन करना चाहिये॥

ध्यानयोग समाधि।

शांभवींमुद्रिकांकृत्वा आत्मप्रत्यक्षमानयेत्।
विंदुब्रह्मसकृद्दृष्ट्वा मनस्तत्रनियोजयेत् ॥७॥

प्रथम शांभवीमुद्रा का अनुष्ठान करके तब आत्मा को प्रत्यक्ष करै अनन्तर बिन्दु मय ब्रह्म का एक बार दर्शन करके वहीं मन को नियुक्त करै।

खमध्येकुरुचात्मानं आत्ममध्येचखंकुरु।
आत्मानंखमयंदृष्ट्वा नकिञ्चिदपिबाधते॥
सदानन्दमयोभूत्वा समाधिस्थोभवेन्नरः ॥८॥

अनन्तर शिर स्थित ब्रह्मलोकमय आकाश के मध्य में अपने जीवात्मा को स्थापन करै और इसी प्रकार अपने जीवात्मा के मध्य में शिर स्थित ब्रह्मलोकमय आकाश को भी स्थापन करै, पश्चात् अपने जीवात्मा

को आकाश में देख के वह पुरुष किसी वस्तु से किञ्चित् भी बद्ध न हो और सदानन्द मय हो के समाधि में स्थित हो जावे इसी को ध्यान योग समाधि कहते हैं ॥

नादयोग समाधि ।

साधनात्खेचरीमुद्रा रसनोर्द्धगतासदा ।
तदासमाधिसिद्धःस्या द्धित्वासाधारणक्रियां ॥९॥

खेचरी मुद्रा साधन के द्वारा जीभ को ऊपर की ओर जानेवाली कर रक्खे, अर्थात् तलुवे के गड्ढे में जो अमृत कूप विद्यमान है उसीमें जीभ को संयुक्त करना होगा । इस क्रिया के द्वारा समाधि सिद्ध हो जाती है और जितनी साधारण क्रियायें हैं सब को छोड़ दे इसको नाद योग समाधि कहते हैं ॥

रसानन्दयोग समाधि ।

अनिलंमन्दवेगेन भ्रामरीकुम्भकंचरेत् ।
मन्दंमन्दंरेचयेद्वायुं भृङ्गनादंततोभवेत् ॥१०॥

भ्रामरी नामक कुम्भक का अनुष्ठान करके, धीरे धीरे हलके वेग से श्वास वायु को परित्याग करै इस योग के साधन करने से देह के भीतर भ्रमर की ध्वनि के समान नाद सुन पड़ता है ॥

अन्तःस्थंभ्रमरीनादं श्रुत्वातत्रमनोनयेत् ।
समाधिर्जायतेतत्र आनन्दःसोहमित्यतः ॥११॥

जब शरीर के भीतर भ्रमरी का नाद सुनै तब वहीं जहां सुन पड़ता

हो अपने मन को लगाय दे, तब उस समय समाधि प्राप्त होती है और उस समय के आनन्द से 'सोऽहं'' (वही ब्रह्म मैं हूं) यह ज्ञान उत्पन्न होता है, इसीको नादयोग समाधि कहते हैं ॥

लयसिद्धि समाधि।

योनिमुद्रांसमासाद्य स्वयंशक्तिमयोभवेत्।
सुशृङ्गाररसेनैव विहरेत्परमात्मनि ॥१२॥
आनन्दमयःसम्भूत्वा ऐक्यंब्रह्मणिसम्भवेत्।
अहंब्रह्मेतिवाद्वैतं समाधिस्तेनजायते ॥१३॥

योगी पुरुष प्रथम योनिमुद्रा का अनुष्ठान करके अपनेको शक्तिरूप मान लेवे, अर्थात् अपनेको स्त्री और परमेश्वरको पुरुषस्वरूप अनुभवकरे अनन्तर मनही मन में ऐसी भावना करे मानो पुरुष स्वरूप परमात्मा के साथ स्त्री स्वरूप आप शृङ्गार रस सम्बन्धी विहार कर रहे हैं। उसके अनन्तर यह भी अनुभव करना होगा "मानो उक्त विहार के द्वारा जो परमानन्द रस उत्पन्न हुआ है उसी रस में मैं निमग्न हो के परब्रह्म के सहित अभिन्न भाव से प्रणय में सम्मिलित हुआ हू। इसी योग के द्वारा "मैंही ब्रह्म और अद्वितीय हूं" ऐसे विज्ञान का सञ्चार होता है, इसी समाधि को लय सिद्धि समाधि कहते हैं ॥

तात्पर्यः—यहां पर पुरुष अपने को स्त्री अनुभव करे यह बात विचार कोटि में भद्दी सी मालुम पड़ती है। फिर इस समय की नवीन शिक्षा की कसौटी में और भी महा निषिद्ध जँचेगी। परन्तु घेरण्ड महाराज ने मनुष्यों की विषय वासना को अच्छी तरह जान समझके इस मार्ग का आविष्कार किया है। समाधि छः प्रकार की, इसी निमित्त दिखाया है कि मनुष्यों की वृत्ति बहुत प्रकार की होती है। १ कोई

उद्दण्ड स्वभाव सदा वीर रस में मस्त रहते हैं। २ कोई शांत स्वभा सदा भजन पूजन में रत रहते हैं। ३ कोई उदासीन स्वभाव सदा स तरह के भावो से दूर ही बने रहते हैं उन्हें कुछ भी नहीं सुहाता। कोई ऐसे भी पुरुष होते हैं कि उनको स्त्री संसर्ग, स्त्री चिन्ता स्त्री ह रव समझना, यही अच्छा लगता है। ५ कोई पुरुष ऐसे होते हैं कि उन साथ थोड़ा भी उपकार करै तो वे उसकी बदली आल्हाद में तन अर्प किये रहते हैं। ६ कोई ऐसे पुरुष होते हैं जो सदा न्यायमें रत रहते है न्याय ही के लिये शरीर तक परित्याग कर देते हैं। इन छः प्रकार पुरुष जब उक्त छः प्रकार की समाधि साधन में लगैंगे तब उनके छ प्रकार के बर्ताव से छः प्रकार की क्रियाओं का अभ्यास होगा औ जिसमें जिस स्वभाव की अधिकता होगी अर्थात् स्वभाव की अजोयंत से कभी २ जो हानि हुआ करती है, जैसे मर्यादा से अधिक वीर रस वाले ने कदाचित् कुल कुटुम्ब माता पिता के साथ वीरता चरितार्थ किया। शांत रस वाले ने आवश्यक कार्य छोड़ भजन पूजन में काल बिताय दिया। उदासीन वाले ने शारीरक व्योहारों से हाथ धोया। स्त्री प्रेमी ने अगम्य तर्क न बचाया। कृतज्ञ पुरुष ने किसी धूर्त के बश हो विवेक खो दिया। न्याय परायण ने न्याय मूल को न समझ उसी में तन अर्पण किया। इत्यादि कुव्यापार नहीं प्राप्त हो सकेंगे। विशेष बात यहां पर यह स्मरण रहै कि जब स्त्री परायण पुरुष ईश्वर के स-न्निधान स्त्री भाव का अभ्यास करै। तो उसकी यह प्रकृति धीरे २ बदल कर दूसरी ओर झुक जावैगी। अब इसी निमित्त यह योग इस भांति लिखा है॥

भक्तियोगं समाधि।

स्वकीय हृदये ध्याये दिष्टदेव स्वरूपकम्।
चिन्तयेद्भक्तियोगेन परमाह्लाद पूर्वकम्॥१४॥

आनन्दाश्रुपुलकेन दशाभावःप्रजायते ।
समाधिःसम्भवेत्तेन सम्भवेन्मनोन्मनी ॥१५॥

विशुद्ध भक्ति और परम आह्लाद के सहित अपने हृदय में अपने इष्ट देव के स्वरूप का ध्यान करे और आनन्द के आंसू बहैं, तथा रोमांच हो और बेहोशी आजावे। इससे जो समाधि अर्थात् मन की एकाग्रता होती है उससे मनोन्मनी अर्थात् मन का खुलासापन हो जाता है इसी को भक्तियोग समाधि कहते हैं ॥

राजयोग समाधि ।

मनोमूर्च्छांसमासाद्य मनआत्मनियोजयेत् ।
परमात्मनःसमायोगात् समाधिंसमवाप्नुयात् ॥१६॥

प्रथम मनो मूर्च्छा नामक कुम्भक का अनुष्ठान करके मन को परमात्मा के सहित मिलाय दे इसी प्रकार परमात्मा के संयोग से समाधि प्राप्त होती है। इसी को राजयोग समाधि कहते हैं ॥

समाधि योग का महात्म ।

इतितेकथितंचण्ड समाधिंमुक्तिलक्षणम् ।
राजयोगःसमाधिः स्यादेकात्मन्येवसाधनं ॥
उन्मनीसहजावस्था सर्वेचैकात्मवाचकाः ॥१७॥

घेरण्ड महाराज कहते हैं कि हे चण्डकापालि ! मैंने तुम से इस समाधि योग को कहा जो मुक्ति का लक्षण है। अब मुख्य बात यह कहताहूं कि चाहे राजयोग समाधि हो, चाहे उन्मनी हो चाहे सहजावस्था

के कोई भी योग हों सब एकही आत्मा के साधन हैं और सब का साधन आत्मा की एकाग्रता है अर्थात् एक रस ध्यान का लगाना है ॥

जलेविष्णुःस्थलेविष्णुः विष्णुःपर्वतमस्तके ।
ज्वालमालाकुलेविष्णुः सर्वंविष्णुमयंजगत् ॥१८॥

ऐसा कोई स्थान नहीं है जहां विष्णु परमात्मा न हों । जल में विष्णु हैं, थल में विष्णु हैं । पर्वत के मस्तक पर विष्णु हैं । अग्नि की राशि में भी विष्णु हैं, यह सम्पूर्ण जगत् विष्णु मय है । अर्थात् कोई पदार्थ विष्णु से भिन्न नहीं है ॥

भूचराःखेचराश्चामी यावन्तोजीवजन्तवः ।
वृक्षगुल्मलतावल्ली तृणाद्याश्चारिपर्वताः ॥
सर्वंब्रह्मविजानीयात् सर्वंपश्यतिचात्मनि ॥१९॥

भूचर अर्थात् पृथ्वि पर विचरन करनेवाले जीव खेचर अर्थात् आकाश में चलनेवाले जीव । और भी जो ये सब जीव जंतु देख पड़ते हैं । तथा बड़े २ वृक्ष, छोटे २ पौधे लता, बल्ली (एक डाल वाले लम्बे वृक्ष) तृण आदि समस्त घास, पानी, पहाड़ इन सबों को ब्रह्म जानना चाहिये और और सबों को अपने आत्मा में देखना चाहिये ॥

आत्माघटस्थचैतन्य मद्वैतंशाश्वतंपरं ।
घटाद्विभिन्नतोज्ञात्वा वीतरागोविवासनः ॥२०॥

इसी शरीर स्थित जो जीवात्मा है वह चैतन्य है और अद्वितीय है (एकही वस्तु व्यापी) यह निरन्तर रहता है कभी नाश को नहीं प्राप्त होता । तथा सब पदार्थों से पर है । इसको शरीर से अलग जानने ही से वीतराग (बन्धन से मुक्त) और वासना रहित भाव प्राप्त होता है ॥

एवंविधः समाधिःस्यात् सर्वसङ्कल्पवर्जितः।
स्वदेहे पुत्र दारादि बांधवेषु धनादिषु॥
सर्वेषु निर्ममोभूत्वा समाधिं समवाप्नुयात् ॥२१॥

जैसा कि कह आये हैं इसी प्रकार समाधि साधन करना चाहिये, किन्तु इस समाधि के साधन में सब प्रकार के सङ्कल्पों को छोड़ देना चाहिये। किस विषय का सङ्कल्प छोड़ना चाहिये, इसपर कहते हैं कि अपनी देह के विषय में, पुत्र दारा आदि के विषयमें, बापू बाधवें और धन आदि के विषय में, तथा सब पदार्थों से ममता छोड़कर समाधिको प्राप्त करे॥

तत्त्वंलयामृतं गोप्यं शिवोक्तं विविधानिच।
तेषांसंक्षेपमादाय कथितं मुक्तिलक्षणम् ॥२२॥

यह तत्व लयामृत है अर्थात् ईश्वर में लय है जीवन मरण ही पर हो के मोक्ष प्राप्ति का लक्षण है, इसको महादेव जी ने बहुत प्रकार से कहा है, परन्तु हमने उन सबों में से संक्षेप लेकर कहा, जो कहा यही प्रधान मुक्ति का लक्षण है॥

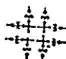
इतिते कथितं चण्ड ! समाधि दुर्लभःपरः।
यद्ज्ञात्वा न पुनर्जन्म जायते भूमिमण्डले ॥२३॥

घेरण्ड महाराज ने कहा है चण्डकापालि। हमने तुमसे दुर्लभ और सब योगों से पर समाधि को वर्णन कहा बस, इतनाही बहुत है, जिस के कि जानने से भूमि मण्डलमें फिर जन्म नहीं होता अर्थात् जन्म मरण बन्धन से मुक्ति हो जाती है॥

उपसंहार ॥

योग विद्या और वैद्यक शास्त्र से कुछ भी फर्क नहीं है, क्योंकि पाठकों को आदि से अन्त लों इस घेरण्डसंहिता के संहिताके साधनों का विचार भलीभांति विदित हो गया होगा कि शारीरक आचार (तनदुरुस्ती) ही इसमें प्रधान साधन है । इसी प्रकार वैद्यकमें भी शारीरक आचार की व्यवस्था सर्वत्र वर्त्तमान है, फिर अब आप कह सक्ते हैं कि योग और वैद्यक से कोई भी फर्क नहीं रहा । अन्त में मुक्ति भी दोनों शास्त्रों का धन सिद्धान्त है, जैसे वैद्यक का सिद्धान्त "धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यंमूलमुत्तमम्" अन्त में मोक्ष पद दियाहै, उसी प्रकार इस योग में भी हरजगह आरोग्यता दर्शाय के अन्त में समाधि साधन का फल लिखा है कि "न पुनर्जन्म जायते" बस इसी निमित्त हमने अपने इस आरोग्यदर्पण के चतुर्थ खण्ड में इस अनूपम योगविद्याके साधन दिखाय के अपने पाठकों को परिश्रम दियाहै कि वे आप इन साधनोंसे फायदा उठावें और संसार का भी उपकार परस्पर कथोपकथन से करें, बस हमारा भी परिश्रम सफल है ॥ इति ॥

घेरण्ड संहिता योगशास्त्र की भाषा टीका समाप्त ।



घेरण्डसंहिता का सूचीपत्र।